इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष ६ अंक २ आषाढ़ मास कलियुगाब्द ५११५ अप्रैल २०१३

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
चेतराम
इरविन खन्ना

सम्पादक :
डॉ० विद्या चन्द ठाकुर

सह सम्पादक
चेतराम गर्ग

सम्पादक मण्डल :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ०ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
अश्वनी कालिया

मुख पृष्ठ :
Drainage Pattern of Yamuna Fourth Order Basin

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव—नेरी, डाकघर—खगल
जिला—हमीरपुर—१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०१९७२—२०३०४४

मूल्यः
प्रति अंक —१५.०० रुपये
वार्षिक — ६०.०० रुपय
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

विवेकानन्दामृतम्
शिकागो धर्मसमभा और
स्वामी विवेकानन्द — डा. गोविन्द प्रसाद शर्मा — ३

संवीक्षण
Vedic Sarsawati in
Himachal Pradesh — V.M.K Puri — १०

देव वृत्त
मंडी जनपद में देवता महासू — डा. दायक राम ठाकुर — २६

क्रान्तिवीर
भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के
महान शहीद राजकुमार प्रताप सिंह — मौलू राम ठाकुर — ३३

राष्ट्रभाषा
महर्षि दयानन्द का राष्ट्रभाषा
उन्नयन — डा. कर्म सिंह — ४२

सृष्टि आख्यान
गुजरात के भील समाज में
सृष्टि रचना की पुराकथा — डा. भगवान पटेल — ४५

सम्पादकीय

भारत माता की सन्तान

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है कि ***माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः*** *अर्थात् यह भूमि हमारी माता है और मैं इस धरती मां का पुत्र हूँ। ऋषि-मुनियों का सम्पूर्ण वसुन्धरा के लिए अभिव्यक्त यह वैदिक ज्ञान राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हमें पुण्यभूमि भारत के साथ माता के श्रेष्ठतम रिश्ते से जोड़ता है, लेकिन आधुनिक भोगवादी प्रवाह में इस रिश्ते से राष्ट्रमानस का एक वर्ग भटक गया है। ऐसा वर्ग भारत भूमि को केवल भूमि मात्र मानता है और उनकी राष्ट्र के साथ मातृभूमि की आस्था मिट सी गई है। यही आस्था का अभाव राष्ट्र के भीतर आतंकवाद, नक्सलवाद आदि के रूप में आसुरी प्रवृत्ति को जन्म दे रहा है।*

भारतभूमि हमारी माता है और हम सब भारत माता की सन्तान हैं। *राष्ट्रमानस में यह अवधारणा सुदृढ़ता से स्थापित हो तो राष्ट्र विरोधी शक्तियां निर्मूल हो जाएंगी और राष्ट्र की शक्ति सशक्त और समर्थ होगी। राष्ट्रनिष्ठा के इसी भाव संस्कार से सम्पन्न होकर हम मन, वचन और कर्म से स्वामी विवेकानन्द जी का यह संदेश फलीभूत करें –*

पूर्वजों के नाम से हम अपने को लज्जित नहीं, गौरवान्वित समझें। मनुष्य जब पूर्वजों को मानने में लज्जित होता है तो समझ लो उसका विनाश निकट है। भारत की अवनति इसलिए नहीं हुई कि हमारे पूर्व पुरुषों के नियम एवं आचार व्यवहार खराब थे, अपितु इसकी अवनति का कारण यह था कि उन नियमों और आचार-व्यवहारों को उनकी न्यायसंगत परिणति तक नहीं ले जाने दिया गया। हम लोग अतीत का जितना अध्ययन करेंगे, भारत का भविष्य उतना ही उज्जवल होगा।

विनीत

डॉ0 विद्या चन्द ठाकुर

शिकागो विश्वधर्म महासभा और स्वामी विवेकानंद

डा. गोविन्द प्रसाद शर्मा

शिकागो के 'कोलम्बस हॉल' में – जहां विवेकानंद के नाम की छोटी सी पट्टिका आज भी लगी है – आयोजित सन् १८९३ के विश्वधर्म महासभा में स्वामी विवेकानंद की भूमिका और उसके विश्वव्यापी प्रभाव को समझने के लिए स्वामी जी द्वारा महासभा में दिए गए व्याख्यानों तक सीमित नहीं रहा जा सकता अपितु विश्वधर्म महासभा में भाग लेने के पूर्व उनके संकल्प तथा महासभा के बाद उनके नि:स्पृह, उदार और निर्भीक व्यक्तित्व तथा विचारों के प्रभाव के साथ ही उस समय के समाचार पत्रों और अन्य लोगों की प्रतिक्रियाओं को जानने के बाद ही स्वामी जी की भूमिका समझी जा सकती है।

शिकागो विश्वधर्म महासभा में स्वामी विवेकानंद की निर्णायक भूमिका और चमत्कारी सफलता के संबंध में हमें विवेकानंद के इस कथन और उनके मन में बैठे इस विश्वास को स्वीकार कर लेना चाहिए, जो उन्होंने शिकागो जाने से पूर्व परिव्राजक अवस्था में अपने गुरु भाई तुरीयानंद से कहे थे तथा जिनको उन्होंने अमेरिका में भी दुहराया था कि "धर्म महासभा का संगठन इसके लिए (अपनी ओर इंगित कर) हो रहा है। मेरा मन मुझसे ऐसा कहता है। सत्यसिद्ध होने में अधिक समय नहीं लगेगा।" उनके मन में विदेश में जाकर भारतीय अध्यात्म के विचारों और हिन्दू जीवन दृष्टि को विश्व के सम्मुख रखने का विचार सन् १८९१ में गुजरात भ्रमण के समय आया। पोरबंदर में जब वे फ्रांसीसी भाषा का अध्ययन कर रहे थे तब उनसे प्रभावित होकर एक विद्वान ने पश्चिम के देशों में जाकर भारतीय अध्यात्म संबंधी अपने विचारों को रखने के लिए कहा। उसने यह भी कहा कि वहां लोग इन विचारों को पसंद करेंगे। विदेश जाने का यह क्रम १८९२ में खण्डवा (म.प्र.) में उस समय और आगे बढ़ा जब उन्होंने सुना कि अगले वर्ष शिकागो में 'विश्वधर्म महासभा' होने वाली है। विवेकानंद के मन में उस महासभा में भाग लेने की इच्छा जागृत हुई और इसी वर्ष बंगलौर के महाराजा के सम्मुख पश्चिम के देशों में जाने का अपना मंतव्य व्यक्त किया।

शिकागो में विश्वधर्म महासभा के आयोजन का उद्देश्य यह था कि कि 'महासभा में प्रत्येक धर्म के प्रतिनिधि का भाषण हो और श्रोतागण प्रत्येक प्रतिनिधि के उन विचारों को सुनें जिनके कारण उस प्रतिनिधि को अपने धर्म में श्रद्धा है, पर इसके पीछे एक प्रबल भावना और थी। यह आयोजन, ईसाई अभिमान लिए हुये था। इस महासभा के आयोजकों की यह धारणा थी कि महासभा में ईसाई धर्म निर्विवाद रूप से अपनी श्रेष्ठता स्थापित करेगा और अन्य धर्मों का बौनापन यहां साबित हो सकेगा। जैसा कि जॉन.एच. बैरोज का कथन है, "हम विश्वास करते हैं कि ईसाई

धर्म अन्य सभी धर्मों के पैर उखाड़ देगा, क्योंकि उसमें वे सभी सत्य निहित हैं, जो अन्य धर्मों में विद्यमान हैं एवं इसके अतिरिक्त, वह एक मुक्तिदाता ईश्वर को प्रकाशित करता है।" शिकागो में स्वामी विवेकानंद ने इस बात को भांपते हुए अपने एक पत्र में लिखा, "ईसाई धर्म का अन्य सभी धार्मिक विश्वासों के ऊपर वर्चस्व साबित करने हेतु ही विश्व धर्म महासभा का संगठन किया गया था।" और भी, "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह विश्वधर्म महासभा का संगठन जगत के समक्ष अक्रिस्तियों का मजाक उड़ाने हेतु हुआ था।"

किन-किन बाधाओं और विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए स्वामी विवेकानंद शिकागो विश्वधर्म महासभा में पहुंचे यह सर्वविदित है। पर इस पूरे घटनाक्रम में चार बातें महत्व की हैं, पहली बात यह कि – विवेकानंद किसी राजा, महाराजा अथवा साहूकार के आर्थिक सहयोग से शिकागो विश्वधर्म महासभा में भाग लेने नहीं गए अपितु उनके शिष्यों ने जो चन्दा जमा किया था उससे गये। उन्होंने कहा भी था, "मैं जनता और निर्धनों का प्रतिनिधि बनकर जा रहा हूं।" अमेरिका में भी उन्होंने एक मुलाकात में यही कहा था कि "मैं यहां चन्दे से आया हूँ। दूसरी बात यह कि वे किसी पंथ, सम्प्रदाय, मजहब या वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में 'विश्वधर्म महासभा' में भाग लेने नहीं गये अपितु समूचे हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म की ओर से बिना निमंत्रण मिले गये। तीसरी बात निहायत निजी हिन्दू आस्था और समर्पण से जुड़ी है। सर्वधर्म महासभा में भाग लेने के लिए जाने से पूर्व विवेकानंद ने मां शारदा से आशीर्वाद मांगा था। मां शारदा ने अपना आशीर्वाद तो दिया ही साथ ही रामकृष्ण देव का भी आशीर्वाद उन्हें दिया। रामकृष्ण देव के आशीर्वाद की बात समझने की है। ध्यान रहे जब विवेकानंद को कोलकाता के निकट कोसीपुर के उद्यान में निर्विकल्प समाधि लगी और बाह्य चेतना आने के बाद जब वे अपने गुरु के पास गये तब रामकृष्ण देव ने कहा था, "अच्छा अब तो तुम समझते हो ? यह (उच्चतम उपलब्धि) अब से ताला-चाबी के भीतर रहेगी। तुम्हें मां का कार्य पूर्ण करना है। कार्य समाप्त हो जाने पर वे खुद ही ताला खोल देगी।" नरेन्द्र के द्वारा और पूछने पर रामकृष्ण देव ने कहा था, "तू संसार में महान कार्य करेगा, तू मनुष्यों में आध्यात्मिक चेतना लाएगा ..." विश्वधर्म महासभा में भाग लेने के लिए जाना और वहां आध्यात्मिक चेतना का संचार करना। कहीं रामकृष्ण देव की ही तो इच्छा की परिणति का प्रथम कदम नहीं था ? चौथी बात – विश्वधर्म महासभा में जाने से पूर्व परिव्राजक अवस्था में उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया तथा भारत के वैभव और विपन्नता को निकट से देखा। सांस्कृतिक परम्पराओं की पकड़ और उन्नत ज्ञान को आत्मसात किया, इस रूप में कि वे अपने में समूचे भारत को समेटे हुए थे।

स्वामीजी ३१ मई १८९३ को बम्बई (मुंबई) से अपना नया नाम विवेकानंद धारण कर अमेरिका के लिए गये और ११ सितम्बर १८९३ को विश्वधर्म महासभा के प्रथम दिन के द्वितीय सत्र में उन्होंने अभिवादन के उत्तर में धन्यवाद भाषण दिया जिसने इतिहास रच दिया।

विश्वधर्म महासभा स्वामीजी के गौरवपूर्ण जीवन और विश्व पटल पर हिन्दू धर्म के उदात्त आदर्शों को उद्घाटित करने वाला निर्णायक मंच सिद्ध हुआ। यह वह अवसर था जो शताब्दियों बाद उपस्थित हुआ था जिसमें स्वामीजी दिग्विजयी रूप में अवतरित हुए थे। उनके भव्य एवं

विशाल व्यक्तित्व, ज्ञान और संभाषण कला ने सभी को सम्मोहित किया और हिन्दू धर्म को व्यापक और सीमा रहित दृष्टि से समझने का आधार दिया। हमें यह समझना होगा कि स्वामी जी ने ऐसा क्या कहा जिसके कारण महासभा का पूरा वातावरण बदल गया और श्रोताओं तथा आयोजकों की सोच में एक सात्विक ऊर्जा का संचार और आत्मीयता का भाव जागृत हुआ। इसका प्रारंभ स्वामीजी के उस वक्तव्य से हुआ था जो उन्होंने अभिवादन के उत्तर में दिया था। वक्तव्य अत्यंत संक्षिप्त लगभग ४८० शब्दों (जिसमें के, है, था, मैं, हूँ की गिनती भी सम्मिलित है) का था पर अत्यंत आत्मीय और प्रभावी सम्प्रेषण से युक्त था।

प्रथमत: स्वामी जी ने सभी श्रोताओं को 'अमरीकीवासी बहनों और भाईयो' कहकर सम्बोधित किया, इन पांच शब्दों के सम्बोधन ने जादुई प्रभाव डाला, जो अमेरिकावासियों को अन्तस की गहराई तक छू गया। फलत: पूरा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज गया। स्वयं स्वामी जी ने कहा, "दो मिनट कानों को बधिर कर देने वाली तालियों की गड़गड़ाहट चलती रही।" वस्तुत: मानवमात्र में भाई और बहिन का पवित्र संबंध स्थापित करने वाला सम्बोधन अमेरिकी सभ्यता के लिए नया था। इस सम्बोधन में उन्हें लगा कि यह सन्यासी कितने उदात्त और पवित्र संबंधों के आधार पर अपनी बात कहने आया है। सच है सम्बोधन रिश्ते बनाते हैं। सम्बोधन और उसके बाद निर्मित वातावरण के संबंध में श्रीमती एस.के. ब्लॉजेट लिखती हैं, "मैं १८९३ की शिकागो विश्वधर्म महासभा में उपस्थित थी, जब वह नवयुवक (विवेकानंद) उठा एवं उसने कहा, अमेरिकावासी बहनों तथा भाईयो, सात हजार लोग उनके सम्मान में उठ खड़े हुए जिसके विषय में वे अनजान थे। जब वह व्याख्यान समाप्त हुआ तब मैंने देखा, अनेकों युवतियां बेंचों पर चलते हुए उसके पास जाने हेतु व्यग्र हैं तथा मैंने अपने आप से कहा, अच्छा, मेरे बच्चे, यदि तुम इस आक्रमण को झेल गए तो सचमुच ही भगवान हो।" और हम सब जानते हैं कि स्वामीजी इस आक्रमण को सहज ही झेल गए।

इसके बाद स्वामी विवेकानंद ने केवल अपनी ओर से नहीं अपितु संसार के प्राचीन महर्षियों के नाम पर सभी का धन्यवाद किया। इस प्रकार उन्होंने भारत की हजारों वर्षों की ऋषि परम्परा का साक्षात्कार श्रोताओं को कराया। पर बात केवल यहीं तक नहीं थी। स्वामी विवेकानंद ने अपने व्याख्यानों में भारतीय जीवन दृष्टि और चिंतन को व्यक्त किया। रोमां रोला के अनुसार, "अन्य सभी वक्ताओं ने अपने ईश्वर और अपने ही सम्प्रदाय की बात की थी। सिर्फ वे ही अकेले थे जिन्होंने उन सब के ईश्वर की चर्चा की और उन सबको एक सार्वभौम सत्ता में आबद्ध कर दिया।" स्वामी विवेकानंद के व्याख्यानों में वैचारिक उदारता, धार्मिक सहिष्णुता, पारस्परिक सहयोग और व्यापक हिन्दू जीवन दृष्टि की व्याख्या मिलती है।

एक दूसरे के धर्म और उसकी पूजा पद्धति को समझने तथा सम्मान देने की दृष्टि से उन्होंने कहा –

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामपर्णव इव।।

"जैसे विभिन्न नदियां भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो!

भिन्न-भिन्न रूचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अंत में तुझ में ही आकर मिल जाते हैं।" सम्प्रदायों में भ्रातृभाव का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने दूसरे दिन कुएं और समुद्र के मेंढक की कहानी सभी को सुनाई जिसमें साम्प्रदायगत संकीर्णताओं को त्यागने की बात थी। धर्म महासभा में हिन्दू धर्म पर स्वामी जी का विस्तृत व्याख्यान हुआ। अंतिम दिन विदाई के अवसर पर विश्व को सब धर्मों में एक ईश्वर की उपस्थिति का संदेश देते हुए उन्होंने कहा कि, "ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए और न ही हिन्दू अथवा बौद्ध को ईसाई ही। पर हाँ, प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों के सार-भाग को आत्मसात् करके पुष्टि-लाभ करें और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी प्रकृति के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो।" शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की सम्पत्ति नहीं है। प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ व अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है अब इन प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखें कि अन्यान्य सारे धर्म नष्ट हो जाएंगे और केवल उसका धर्म ही अपनी सर्वश्रेष्ठता के कारण जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्थल से दया करता हूं और उसे स्पष्ट बतलाए देता हूं कि वह दिन दूर नहीं है, जब उस जैसे लोगों के अड़ंगों के बावजूद भी प्रत्येक धर्म की पताका पर यह स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा—'सहयोग न कि विरोध', 'पर-भाव-ग्रहण, न कि पर-भाव-विनाश', 'समन्वय और शांति, न कि मतभेद और कलह'।"

इन विचारों और भावनाओं का प्रभाव आज भी है, विश्व का प्रबुद्ध वर्ग आज भी विश्वशांति, समानता और न्याय को धार्मिक सहिष्णुता, पारम्परिक समानता और समन्वय के विचारों में देखता है।

यह स्वामी विवेकानंद के उदात्त विचारों का ही प्रभाव है कि आज जबकि "क्लैश ऑफ सिविलाइजेशंस' की बात की जा रही है तथा नए सिरे से मानव संघर्ष के आधार और आयाम खोजे जा रहे हैं, विश्व आज से १२० वर्ष पूर्व व्यक्त स्वामी विवेकानंद के विचारों में सभ्यताओं के मध्य सहयोग के आधार खोज रहा है तथा विभिन्न संस्कृतियों को स्वीकार कर रहा है। उदाहरण के लिए २१वीं शताब्दी में शिक्षा के स्वरूप के संबंध में यूनेस्को द्वारा गठित डेलर्स कमीशन रिपोर्ट (१९९६) जिसका शीर्षक है 'लर्निंग—द ट्रेजर विदिन' में देशों की संस्कृतियों के प्रति सम्मान भाव रखते हुए विभिन्न देशों में दी जाने वाली शिक्षा के संबंध में कहा गया है कि, शिक्षा की जड़ें (देश की) संस्कृति में और प्रतिबद्धता विकास" में होनी चाहिए।

विश्वधर्म महासभा में स्वामी जी के व्यक्तित्व के कई रूप देखने को मिलते हैं। प्रथमत: वे संकोची, शांत और आत्मस्थ लगे। प्रथम दिन वे अपने बोलने की बारी को टालते हुए लगे और जब उनके बगल में बैठे फ्रांस के धर्म गुरु जी. बोनॅट मॉरी ने उनको बोलने के लिए कहा तब वे मन में 'देवी सरस्वती' को स्मरण करते हुए सम्बोधन करने के लिए उठे और विजेता की तरह सम्बोधन करने लगे। उन्होंने बाद में लिखा कि "मेरा हृदय जोरों से धड़क रहा था तथा जीभ तो लगभग सूख ही गई थी।"

विश्वधर्म महासभा में विवेकानंद की प्रतिभागिता गरिमापूर्ण थी। उनके सभी व्याख्यानों में

शाश्वत मूल्यों के प्रति सम्मान समन्वयवादी दृष्टि और दूसरे के अस्तित्व की स्वीकृति का भाव था। विश्वधर्म महासभा में ऐसे भी अवसर आए जब वे मुखर भी हुये, दसवें दिन (२० सितंबर, १८९३) भारत के लिए ईसाई क्या कर सकते हैं ? विषय पर बोलते हुए उन्होंने कहा मुझे विश्वास है कि यदि मैं आप लोगों के कुछ दोषों पर विवेचन करूं, तो आप बुरा नहीं मानेंगे। आप लोग अपने धर्मोपदेशक अन्य देशों में भेजकर मूर्तिपूजकों को अपने धर्म में लाने के लिए तो बड़े उत्सुक हैं पर जो लोग अन्न बिना मर रहे हैं, उन्हें बचाने के लिए आप कोई उपाय क्यों नहीं करते ? और भी ... क्षुधातुरों को धर्म का उपदेश देना उनका अनादर और तिरस्कार करना है। भूखों को आध्यात्मिक ज्ञान सिखाना उनका उपहास करना है।"

जब रेवरण्ड जोसेफ कुक द्वारा हिन्दू धर्म की निंदा की गई तब स्वामी विवेकानंद का आक्रामक रूप देखने को मिला, वे क्रुद्ध थे तथा उन्होंने ईसाई धर्म पर कठोर प्रहार करते हुए कहा, "पूर्व से आये हुए हम यहां दिन-प्रतिदिन बैठे हुए हैं और हम पर कृपा करने का भाव, रखकर कहा जाता है कि हमारे लिए ईसाई धर्म स्वीकार करना ही उचित है, क्योंकि ईसाई राष्ट्र सबसे अधिक समृद्ध है। हम अपने चारों ओर देखते हैं तो हमें जान पड़ता है कि पच्चीस करोड़ एशियाई जनता के गालों पर अपने पदतल जमाकर समृद्ध राष्ट्र इंग्लैंड खड़ा है। विगत इतिहास की ओर दृष्टिपात करते ही हमारे ध्यान में आता है कि ईसाई यूरोप की समृद्धि का प्रारंभ स्पेन से हुआ। स्पेन की सम्पन्नता मेक्सिको पर कब्जा करने के पश्चात् शुरू हुई। ईसाई धर्म अपनी सम्पन्नता अपने बंधुओं के गले काटकर प्राप्त करता है। इस मूल्य पर हिन्दू समृद्ध बनना स्वीकार नहीं करेगा।"

बोस्टन में स्वामी विवेकानंद को 'रामकृष्ण देव' पर बोलना था पर वे संसारी श्रोताओं को देखकर और अमेरिकीजन की क्रूरता तथा अमानवीयता से इतने आहत और दु:खी हुये कि उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की निर्मम आलोचना प्रारंभ कर दी – यह आलोचना इस सीमा तक थी कि श्रोता उठकर चले गये तथा अगले दिन समाचार पत्रों ने भी प्रतिकूल टिप्पणियां की, पर स्वामी विवेकानंद ने अपने क्रोध को दबाया नहीं, उन्होंने कहा, "आप कितनी भी डींग हाँकें। क्या बिना तलवार के कहीं आपकी ईसाइयत सफल हुई ? आपका धर्म विलासिता का लोभ दिखाकर प्रसारित किया जाता है। इस देश में मैंने पाखण्ड ही देखा–सुना है। यह सब ऐय्याशी, ईसा के नाम पर। जो ईसा की शरण का ढोंग करते हैं, वे सिर्फ पैसा बटोरते हैं। ईसा को यहां एक ऐसा पत्थर भी न मिलेगा जिसका तकिया बना वह लेट सके... तुम ईसाई नहीं हो। ईसा की शरण में लौटो।"

विश्वधर्म महासभा में विवेकानंद के बाह्य व्यक्तित्व की भी चर्चा बहुत रही। उन्होंने वैचारिक धरातल पर जो कहा वह तो उच्च कोटि का था ही उनका व्यक्तित्व भी कम प्रभावी नहीं था। ३० वर्ष के युवा सन्यासी का आकर्षक चेहरा और सुड़ौल शरीर सभी के आकर्षण का केन्द्र था। १२ सितम्बर के 'शिकागो टाईम्स' में स्वामी विवेकानंद का एक शब्द चित्र प्रकाशित हुआ। इस शब्द चित्र से विवेकानंद के बाह्य व्यक्तित्व की एक झलक मिलती है, "जिस चेहरे एवं पोशाक ने विशेषतया महिलाओं को अत्यधिक आकर्षित किया वह था विवेकानंद नामक एक अत्यंत सुंदर नवयुवक का ...। उनकी पोशाक चमकदार नारंगी रंग की थी, उन्होंने एक लम्बा कोट तथा उसी रंग

की पगड़ी पहन रखी थी। विवेकानंद एक ब्राह्मण सन्यासी हैं तथा हार्वर्ड के प्राध्यापक राइट के कथनानुसार ''वह विश्व के सबसे अधिक शिक्षित व्यक्तियों में से एक हैं।" और भी शकागो एडवोकेट ने २८ सितंबर के अंक में लिखा, "कुछ विषयों में सबसे आकर्षक व्यक्तित्व था ब्राह्मण सन्यासी, स्वामी विवेकानंद का। नारंगी वस्त्र पहने केसरिया साफा धारण किए हुये, साफ दाढ़ी, गोल एवं सुन्दर चेहरेवाला तथा विशाल सूक्ष्म एवं गहरी पैनी आँखों से युक्त एवं सरलतापूर्वक परिस्थिति पर अधिकारपूर्ण प्रभुता, आन्तरिक आनंद से विभूषित एक व्यक्तित्व, उनका अंग्रेजी का ज्ञान ऐसा था मानो वह उनकी अपनी ही मातृभाषा हो।" सर हिरेम मैक्झिम का विचार है कि, "उनका अंग्रेजी बोलना बैवस्टर के समान था।" विश्वधर्म महासभा में उनका मोहक व्यक्तित्व किस प्रकार लोगों के दिलोदिमाग को झंकृत करता रहा। इसकी एक झलक,ट्रानस्क्रिप्ट में ३० सितम्बर १८९३ को प्रकाशित एक लेख की कुछ पंक्तियों में मिलती है, "धर्म सभा के समक्ष विवेकानंद का सम्बोधन आकाश जैसा व्यापक था ... अपने विचारों की भव्यता तथा अपनी उपस्थिति के कारण भी वे धर्मसभा के अत्यंत लोकप्रिय व्यक्ति हैं। यदि वे केवल सभा मंच से गुजरते भर हैं तो भी उनका तालियों से स्वागत किया जाता है तथा हजारों व्यक्तियों की इस विशेष अभ्यर्थना को वे बालसुलभ संतोष के साथ ग्रहण करते हैं, जिसमें अहंकार लेशमात्र भी नहीं होता।"

यह वह वर्णन हैं जो अमेरिका के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ पर स्वयं विवेकानंद के शब्दों में वे क्या थे इसका वर्णन भी इसी पत्र में मिलता है, जब उनसे पूछा गया कि क्या वे अपने रिवाजी सन्यासी वस्त्र पहने हुये हैं, वे बोले, "ये परिधान बहुत अच्छे हैं, जब मैं स्वदेश में होता हूं तो चिथड़े हुए वस्त्रों में रहता हूं और नंगे पांव विचरण करता हूं।" विश्वधर्म महासभा में स्वामी विवेकानंद की प्रभावी भूमिका और उनके जादुई प्रभाव की गरमाहट भारत भी पहुंची। भारत उन दिनों पराधीन था। हमारी मूल सांस्कृतिक चेतना धुंधली पड़ गई थी। उस पर पाश्चात्य प्रभाव हावी हो रहा था। भारत के राजनीतिक दल का नेतृत्व ब्रिटिश राज का प्रशंसक और भक्त बना हुआ था। भारतीय युवा के जीवन में भटकाव था। सभी पुराना बेकार है तथा पश्चिम की नई रोशनी हमें मार्ग बतलाएगी इस भ्रम में वह दिग्भ्रमित था। ऐसे समय में स्वामी विवेकानंद के द्वारा विश्वधर्म महासभा में हिन्दू धर्म, संस्कृति और जीवन मूल्यों तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा का जिस तेजस्विता के साथ प्रतिपादन किया गया उसने भारत में नवचेतना का संचार किया। विवेकानंद सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जागरण पुरोधा बने। युवाओं में प्राचीन भारत के प्रति गौरव का भाव जागृत हुआ तथा राष्ट्रीय जीवन में आत्मगौरव और आत्माभिमान का जागरण हुआ।

विश्वधर्म महासभा के सम्पन्न होने के बाद अमेरिका में इसकी उपलब्धियों पर विचार का क्रम समाचार पत्रों और विज्ञजनों के बीच काफी चला। नि:संदेह विश्वधर्म महासभा की पृष्ठभूमि में यह विचार तो था ही कि अन्तत: और स्पष्टत: क्रिश्चियन धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करने में यह महासभा सफल होगी और शेष धर्मों का बौनापन भी प्रकट होगा पर ऐसा हो न सका, यद्यपि इसका अंदेशा विश्वधर्म महासभा के प्रारंभ करने से पूर्व भी कुछ पादरियों को था। हांगकांग के एक पादरी ने लिखा भी, कि, "..... तुम (आयोजक) अनजाने ही ईसा मसीह से विश्वासघात करने की योजना

बना रहे हो।" तथापि, धर्म महासभा के बाद मेरी लुई बर्क (भगिनी गार्गी) का यह कथन बहुत कुछ कहता है "सत्रह दिनों के लम्बे, कभी-कभी थकाने वाले तो कभी-कभी चैतन्य जगा देने वाले सत्रों के बाद सितम्बर २७ की संध्या को धर्म महासभा की समाप्ति हुई। उसमें धर्मविचारक की प्रत्येक तरलतम से लेकर घनतम छटा की अभिव्यक्ति हुई एवं श्रोताओं ने यह समझने में भूल नहीं की कि उच्चतम अभिव्यक्ति बिल्कुल ही अनपेक्षित क्षेत्रों से आई। वास्तव में अनेक ईसाईयों को पूरा मामला असफल एवं विनाशकारी लगा।" ये अनपेक्षित क्षेत्र पूर्व के थे, विशेषत: भारत।

अन्त में हम विवेकानंद के इस आत्मविश्वास पर पुन: विचार करें कि, 'विश्वधर्म महासभा को ईश्वर ने उन्हें सफलता देने के लिए बनाया है।' ऐसा हुआ भी विश्वधर्म महासभा में उनकी भूमिका ने यह प्रमाणित भी कर दिया है कि पूर्व के इस संन्यासी ने जिसे 'योद्धा सन्यासी' सहित कई विशेषणों से पुकारा गया, विश्वधर्म महासभा में निर्णयात्मक और सर्वाधिक प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन किया था। विवेकानन्द को स्वयं पर विश्वास था और इस विश्वास ने इतिहास रच दिया। इस तथ्य को ध्यान में रखकर सर हिरेम मैक्झिम ने महासभा के २० वर्ष बाद लिखा "... किंतु जब विवेकानन्द बोले तो वे (अंग्रेज) जान गए कि उनका पाला एक नेपोलियन के साथ पड़ा है। उनका पहला भाषण दैवी ज्ञानानुभूति से कुछ कम नहीं था .... विवेकानन्द उस दिन सिंह साबित हुए। शीघ्र ही वे अपरिमित लोकप्रियता के पात्र हुए। .... वह (विवेकानन्द) पादरियों से ऐसे खेला जैसे एक बिल्ली चूहे से खेलती है। वे (अंग्रेज) किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए।" दुनियां विश्वधर्म महासभा की बहुत सी बातों को, चर्चाओं को, व्याख्यानों को भूल सकती है पर स्वामी विवेकानन्द की तेजस्वी वाणी और गरिमापूर्ण उपस्थिति को ओझल नहीं कर सकती। वे उस महासभा के नायक बनकर उभरे।

विश्वधर्म महासभा में विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के मूल तत्वों को ही नहीं समझाया अपितु संसार में सभी धर्मों को किस प्रकार मिल जुलकर रहना चाहिए यह भी बतलाया। यदि संक्षेप में यह विचार किया जाए कि विवेकानन्द के बोलने की प्रेरणा तथा पृष्ठभूमि क्या थी तो हमें भगिनी निवेदिता के इस कथन को ध्यान में रखना पड़ेगा कि, ''उनके श्रीमुख से भारतवर्ष का वह धर्म नि:सृत हुआ, जिसे उन्होंने दक्षिणेश्वर में अपने श्रीगुरुदेव में मूर्तरूप लिए देखा तथा जिसका अनुभव उन्होंने परवर्ती काल में अपने वर्षों के भारत भ्रमण में किया था।"

राष्ट्रीय अध्यक्ष, विद्या भारती
अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान।

VEDIC SARASWATI IN HIMACHAL PRADESH ITS ORIGIN FROM THE HIMALAYA AS DEDUCED FROM SCIENTIFIC SIGNATURES IMPLANTED ON LANDFORMS

V.M.K. Puri

Introduction

In the ancient river systems of Bharat, only three rivers emerge instantaneously in Hindu ethos viz. Ganga, Yamuna and saraswati. Nevertheless, Saraswati is celebrated and known all over the country in different forms. It is a river, amongst the best of rivers, *Naditame.* She is the mother in whose lap a civilization was nurtured. She nourished the people living on its bank, *Ambitame.* She had attained the status of divinity even in the days of Rigveda, *Devitame.* No natural phenomenon like a river can be confined within geographical boundaries like Himachal Pradesh. On the other hand, this celebrated river did traverse through present day Himachal Pradesh. Therefore, It is essential that the problem of Saraswati is tackled in a broader perspective so that a meaningful analysis could be carried out.

In vedic geography, there is a mention of *Sapta Sindhu* i.e. seven rivers in which Saraswati attains an important description. Most of these rivers exist even today except Saraswati which has disappeared completely. Those scholars who question the antiquity of Hindu Civilization even doubt the existence of Saraswati in Bharat. Nevertheless, recent scientific studies in this connection have revealed data to irrefutably prove that Saraswati did exist in Bharat as described in *Sapta Sindhu* in ancient scriptures. In this connection, contributions of modern scientists like Drs. S.S. Merh, B.P. Radhakrishna, Baldev Sahai, K.Kasturirangan, S.L. Rao, B.Shashishekharan, S.P. Gupta, B.B. Lal, Shivaji Singh, Narhari Acher, S. Kalyanraman, K.S. Valdiya etc. is duly acknowledged. Term (Saraswati has been very loosely used to describe to more term) Saraswati has been very loosely used to describe to more than 30 channels that are located in different and unrelated areas like Badrinath in Himalaya to West Bengal in the east and elsewhere in Bharat. Therefore, term Vedic Saraswati is used to designate the mighty river that had once existed in northwest Bharat that finds its reference in *Sapta Sindhu (Fig.1)*

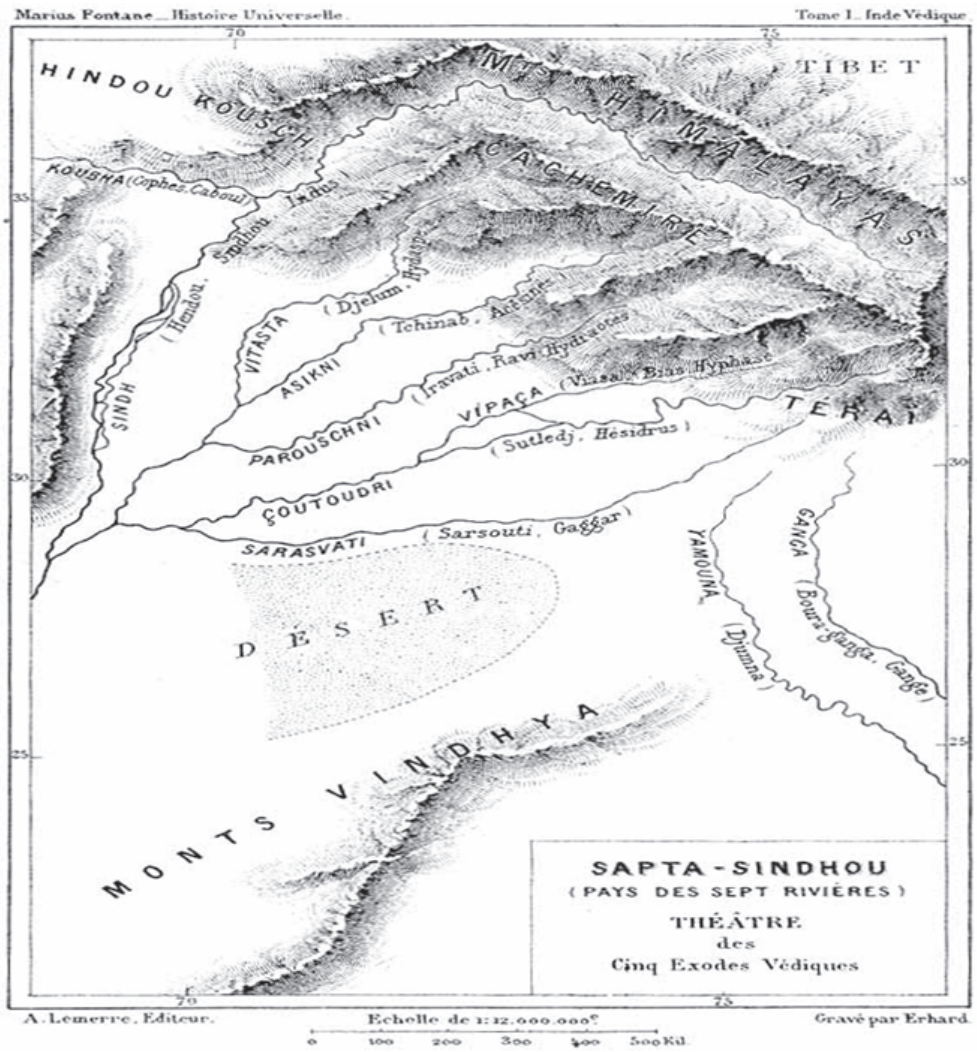

Map of Sapta Sindhu (Nation of Seven Rivers) Marius Fontane, 1881; Histoire Universally, Inde Vedique (de 1800 a 800 av. JC) Alphonse Lemerre, Eduteur Paris.

Vedic Saraswati was a *gigantic river* system that originated from Himalaya[1], entered plain flowed in southwesterly direction through present day Haryana, Punjab, Rajasthan and Gujarat before joining the Arabian Sea. This river was mightier than present day the Brahamputra and Ganga. Ancient Vedic civilization flourished along its banks and important cities like Kurukshetra, Shatarna, Sirsa, Kalibanga, Banawali, Rakhigarhi, Pilibanga, Suratgarh, Lothal, Dholavira etc. flourished along this mighty river. Nevertheless, it was life line of northwestern and western Bharat.

It is, therefore, natural that this river is adored in Rigveda in 72 richa (cerses) and other later scriptures. In Rigveda, this river has been described as supreme[2] amongst all other rivers, swift and Violent[3] river that possessed enormous discharge responsible for causing massive floods on a large scale[4]. In Mahabharata, this river has been described to follow a course towards the sea[5]. During passage of time, It became extinct, the only major river in northern Bharat to suffer such an unfortunate fate. At present, only its fossil valleys have been deciphered at numerous locations whereas it has become a seasonal river in some other areas.

PERENNIAL SOURCE OF VEDIC SARASWATI

A mighty river of the magnitude of Vedic Saraswati must have a perennial source. This source should be in a position to provide a continuous supply of water from a permanent reservoir to the river system. Such reservoirs do exist in Himalaya in the form of glaciers which cover nearly 9.3% of its total area. A glacier is a mass of snow and ice that flows due to gravity (Puri and Siddiqui, 1966)[6] and occupies a U-shaped valley. The glacier terminates where melting processes make it impossible to survive. A melt water channel flows out from its terminus. This melt water channel develops into a river system due to contributions downstream from other tributary glaciers lying in the same basin. Consequently, this river system acquires a perennial nature (Puri and Shukla, 1996)[7]. Therefore any perennial river must originate from a glacier or a glacier system that is bound by a well defined basin. It is quite logical to conclude that even Vedic Saraswati had a glacier fed source and it was a perennial river system.

India is located in a tropical region but temperate like conditions do exist in high altitude area in Himalaya. High relief causes accumulation of show and ice that in turn give rise to glaciers. In the past, these glaciers had descended to still lower elevations in Himalaya due to cooler climate caused by Pleistocene (Berggren, 1995)[8] Ice Age. These bodies have left behind their signatures implanted on topography (Puri et. al., 1996)[9]. Therefore, the surmise of Rishi pertaining to origin of Vedic Saraswati from Himalaya (Rigveda, Op. cit.) is correct since glaciers are restricted to Himalaya only in Bharat.

CRITICAL BASIN IDENTIFICATION IN HIMALAYA

Even a casual glance on a map depicting present day rivers of northern Bharat will reveal two clearly identifiable and distinct river systems. First belongs the Indus system that flows towards the Arabian sea and second the Ganga System flows towards the Bay of Bengal; the latter encompasses the Brahamputra also. Moreover, a critical zone exists in northern Bharat which

is drained by the Yamuna River. It flows in a very peculiar manner after entering plains near Kalesar (Haryana). Its course is almost southerly and it gradually swings eastwards and joins the Ganga on its southern bank at Allahabad. Geological studies have indicated that migration of the Yamuna River towards eastward is still continuing today. This anomaly in distribution pattern in rivers on northern Bharat is very significant and deserves closer scrutiny.

Compilation of glacier inventory was taken up as a global project under the aegis of international Commission of Snow and Ice (ICSI) and UNESCO Consequently, a Temporary Technical Secretariat (TTS) for world Glacier Inventory (WGI) was established at Zurich. The main objective of this endeavour was to attain uniformity in data collection in science of snow, ice and glaciers all over the world. Therefore, the TTS delineated various Mega river basins in the world in a specified sequence called 'order' and issued appropriate guidelines for data compilation (Muller et al. 1977)[10]. The TTS for WGI followed inverse Strahler order (commonly used in basin analysis conducted in Geomorphologic observations); for demarcating various stream orders of the world. thus, a base map on 1:20 Mio scale was compiled in which first to fourth order basins were identified. Here, Stream and basin orders are used as Synonymic terms since stream is always delineated by a basin (Fig. 2).

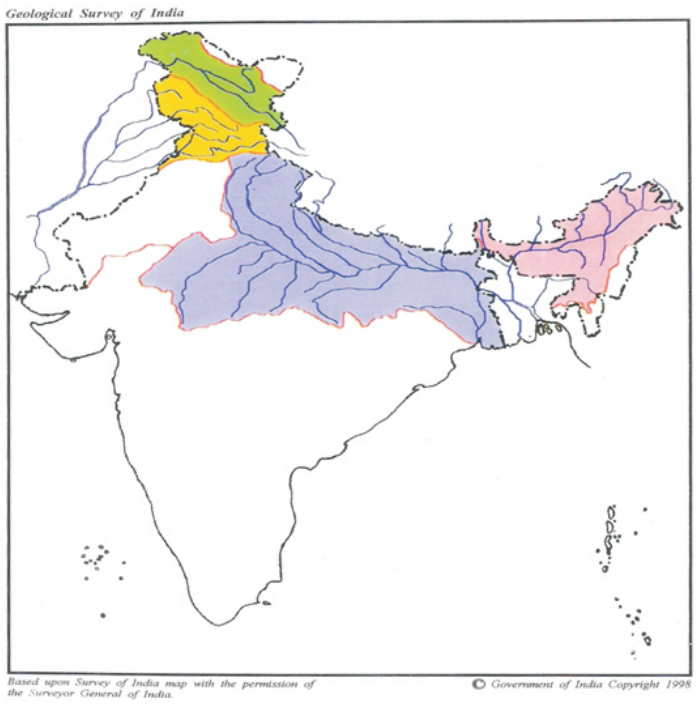

Second Order Basins of Indian Himalaya
Fig. 2

As per the base map of the TTS for WGI for Bharat, only two first order basins encompass the entire Himalaya and north Indian sub-continent, viz. the Indus and the Ganga (Fig.2). The Indus first order Basin contains only 2 Second order basins, 5 Third Order Basins, 13 Fourth Order Basins and 87 Fifth Order Basins, on the other hand, the Ganga First Order Basin comprises 2 Second Order Basin, 5 Third Order Basin, 23 Fourth order Basins and 42 Fifth order basins. In this case, the fifth order Basins were computed by Glaciology Division, Geological Survey of Bharat.

The critical zone in which present day Yamuna Migrates lies at the conjunction of Bhagirathi Fourth order Basin towards east and Satluj Fourth Order basin in the north and the west. The encompassing basin is the Yamuna Fourth Order Basin. It is the most critical basin in which the fossil valleys of Vedic Saraswati are located and deserves a close study and analysis. In other words, the target basin is located in juxtaposition to Ganga First order Basin in the east and the Indus First Order Basin in the west and northwestern areas.

YAMUNA FOURTH ORDER BASIN

This basin is located in present day eastern part of Himachal Pradesh and western Garhwal Himalaya of Uttarakhand. Six rivers drain this basin but in a very peculiar manner i.e. in an anti clockwise disposition. A brief analysis of glaciation in this basin deserves special consideration.

GEOMORPHIC ANALYSIS

A**. Drainage Analysis :**

The peculiar drainage pattern of Yamuna Fourth Order Basin around Paonta Doon area requires a brief discussion :

.**Bata River** - It is the smallest river in the entire basin and originates from Thandoi RF as a consequence of three seasonal channels. It flows towards south and swings to east and later follows south eastern direction before joining the Yamuna River (in Yamuna tear), 6 km southwest of Paonta. The river valley is very wide and it hardly contains any discharge in it.

Markanda River - It originates from a distinct catchment around Nahan in Shiwalik Hills, flows westwards for almost 25 km and swings south south-southwest wards. It cuts across the Shiwalik belt and enters plains near Kala Amb and continues to follow almost southwesterly course in Haryana.

Giri River - It originates from Shimla - Narkanda divide which is a non glaciated catchment and flows initially in south-southwesterly direction.

Subsequently, it takes a southeasterly course and joins the yamuna river, 5 km northeast of Paonta.

Tons River - It initiates as a melt water channel of Banderpuch glacier and flows towards southwest for nearly 75 km to Pabbar confluence (a major right bank tributary). Thereafter, it acquires almost southerly course till it joins the Yamuna (flowing in westerly direction) near Kalsi, again in Paonta Doon.

Yamuna River - It originates from Yamnotri area in a high altitude region from a non-glaciated source at present. It flows in almost southwesterly direction in Paonta Doon and enters plains cutting across Shiwalik belt at Kalesar through Yamuna tear fault. This drainage flows almost westwards in Paonta Doon and occupies a massive valley that contains a thick pile of sediments.

Aglar River - It originates from Dhanolti area of Mussoorie hills from a non-glaciated source and flows in west northwest direction. It joins the Yamuna River east of Paonta in Paonta Doon.

The Aglar, Yamuna and Giri Rivers meets together at Dhalipur, east of Paonta whereas the Tons join the Yamuna, 17.5 Km north of Dhalipur at Kalsi. On the other hand, the Markanda and Bata rivers flow in almost opposite direction. the Bata River is remnant of ancient drainage that had been captured at a later time thus reversing its flow direction. Moreover, all the rivers except the Markanda join one another in Paonta Doon area. Yamuna, Bata and Markanda Rivers occupy very large respective valleys but contain very low discharge. These rivers can be safely said to be misfit ones.

B. Terrace Evaluation

Paonta Doon lying north of Kalesar in Shiwalik belt needs careful examination as it acquires a geomorphologic peculiarity. Five drainages as mentioned above are oriented in anti clockwise disposition form their respective catchments and converge in this area (Fig. 6). It is situated over a thick pile of sediments and the drainage here acquires a considerable width. The elevation difference between Paonta and Kalesar - A stretch of nearly 10 km. is hardly 12 m (40 ft.). In this Valley, sediment pile is very thick and one gets the impression that present drainage is absolutely a misfit in Paonta Doon area. In other words, it is quite clear that a major drainage was flowing in this area that has brought down this huge pile of sediments.

Verma (1971-74)[12] Carried out geological mapping of the area between rivers Markanda and Yamuna. Apart from mapping various elements in Siwaliks, he mapped four generations of terraces in the area. It is quite

logical that the oldest terraces are located at the highest elevations in the valleys. Important oldest terraces are enumerated below :-

Discovery of **Adi Badri** Terrace is the result of recent research carried out by the author in Adi Badri Area, located just south of Shiwalik Hills, almost 30 km north of Jagadhri. A pit was excavated in the oldest terrace on western bank of Somb River by Archaeological Survey of Bharat who designated it as Pit-3. It exhibits angular shaped pebbles of high grade metamorphic rocks and quartzite embedded on the wall of the aforesaid pit. This alien lithology generated tremendous interest as this terrace is situated south of Siwalik Hills in Haryana plains (Fig. 3).

Southward view of Adi Badri shows old temple in foreground. Somb River drains the area. Old terrace is in the upper portion, excavated by ASI.
FIG.3

Sudanwala Terrace : The discovery of Sudanwala constitutes a major breakthrough in delineating the course of Vedic Saraswati. It contains a

signature of this river that is masked now. This terrace is located 2 km S 10º E of Sudanwala and nearly caps the top of Shiwalik hill. Average elevation of this terrace is 660 m (2178 ft.) above mean sea level. It is oblong shaped and possesses almost horizontal disposition. Constituent pebbles of this and metamorphic material are prevalent (Fig. 4 on Title Front Page).

Bata Terrace : It is located almost linear in shape on slopes of the Bata River. This terrace is now dissected at a number of places due to development of younger channels and trends in almost WNW-ESE direction. Here also, pebbles of above mentioned lithology are very common.

Garibnath Terrace : This terrace is situated in the most strategic position in Paonta Doon and lies NNE of Paonta. It is spindle shaped and trends in almost N 15 E - S15 W direction. the elevation difference from terrace top (594 m) to present river bad (408 m) is 186 m (614 ft.) most of the pebbles found in this terrace are from metamorphic and quartzitic rocks.

Markanda Terrace : This terrace occurs in a linear shape on the southern slope of the Markanda valley, lying ESE Nahan. It is also dissected by recent channels. The percentage of quartzitic and metamorphic rocks as pebbles is very high.

CONCLUSIONS

The present day provenance of the Bata, Markanda and **Adi Badri** consists of Shiwalik rocks and it should have deposited pebbles belonging to rocks occuring in Shiwaliks only like sandstones, shale, greywacke etc. The Siwalik Hills do not contain rocks belonging to quartzitic and metamorphic suites. The presence of alien rocks as pebbles in the oldest terrace, point towards a conclusion that another mighty river had once occupied the targeted valleys. It is significant to record that younger terraces in these valleys comprise rocks belonging to shiwaliks only and do not contain even a single pebble of quartzite and metamorphic rocks except along the present day Yamuna valley.

Therefore, terraces at Sudanwala, Bata, Garibnath, Markanda and **Adi Badri** provide an irrefutable scientific evidence to suggest that a gigantic river was flowing in almost WNW direction in the past. Its dimension was very large as it contained very high discharge and traversed a region where above mentioned rocks viz. metamorphic and quartzite occurs in abundance. Such a region does exist in central and upper reaches of Yamuna Fourth Order Basin where Central Crystalline and Jutogh Group of rocks are located towards north, northeast and eastern side of above mentioned terraces.

GLACIATION: PRESENT AND PAST

A. Impact of present day glaciation : Amongst the catchment area of six river basins of higher Fifth order Basins in Yamuna fourth Order Basin, the largest Basins viz. Tons and Yamuna merit speciation attention from geomorphologic point of view. Markanda Catchment (Yet another higher order basin) has a different (westerly) orientation whereas that of remaining five basins converges towards Paonta Doon north of Shiwalik belt. Out of these six catchment areas, the present day glaciers are restricted to only Tons Fifth Order Basin while the remaining ones are devoid of it. The only other potential basin that could hold glaciers is Yamuna Fifth order Basin but surprising no glaciers are found even though its northwesterly extremity is conducive to glaciation. However, the main reason for the absence of glaciers in remaining other four basins is that topographic elevations and catchment configurations are such that these bodies can not exist under the present day climatic conditions.

In Tons Fifth Order Basin, the glacierised area is 152.19 sq. km, which is calculated to be 3.2% of the total basin area. The estimated water content locked up in this basin has been calculated to be 6840 million cubic meters of water equivalent (W.eq.) The largest glacier in the basin is Banderpuch which is 9 km long transverse valley glacier having northwesterly orientations. The river Tamasa or Tons emerges from its snout as melt water channel and continues to grow as the largest drainage in entire Yamuna Fourth Order Basin whereby its daily discharge (Q) is almost equal and sometimes exceeds the combined daily discharge of the Aglar, Yamuna, Giri, Bata and Markanda Rivers. It is striking to record that a linear relationship between the glacierised area and summer mean daily discharge has been established in some of the Himalayan basins (Puri and swaroop, 19966)[11] Hence, contrary to the expectations, It is the Tons and not the Yamuna River that is responsible for major contribution to the nourishment of Yamuna Fourth Order Basin due to the presence of Present day glaciation conditions in Tons basin.

B. Palaeo-glaciation in Yamuna Fourth Order Basin : Glaciers, at present, are in a state of recession with a few exceptions in Himalaya. However, these glaciers had occupied much lower elevations on this mountain system as compared to the present day heights during prime of glaciation in pleistocene Ice Age. With emergence of warm phase of climate i.e., inter glacial period, glaciers started retreating at a faster rate. These bodies have left distinct signatures implanted over the terrain. A general discussion on palaeo-glaciation in Himalaya is beyond the scope of this paper. Nonetheless, It will suffice to mention that glaciers had descended in Himalayan terrain almost up

to 5000 ft. elevation during prime of glaciation. It is quite possible that glaciers might have descended to still lower elevations (as in Kangra valley) but all such signatures have been obliterated now.

In Yamuna Fourth Order Basin, Palaeo-glaciation limits have been identified based on geomorphologic and glaciological parameters. In southern Yamuna Fifth order Basin, the palaeoglaciated area is 609.38 Sq. km. (27.5% of the total basin area) but at present no glaciers are found in this basin. Hence, it is estimated that 1,09,620 million cubic metters of water (W.eq.) has been released that was locked up in the glaciers of past. On the other hand, In northern Tons Fifth Order Basin, 1713.13 Sq. km area was covered by glaciers during prime of glaciation which accounts for 35.13% of the total basin area. The estimated water content (in terms of w.eq.) stored in the basin was 3,08,340 million cubic meters. As mentioned earlier, present day stored water content is merely 6840 million cubic meters. Therefore, 96.8% of stored water in the form of glaciers during Pleistocene Ice Age has already been released from the basin. In other words, the glacier area vis-a-vis total basin area of Tons Fifth Order Basin has shrunk from 35.13% to 3.12% during the corresponding period.

It is quite striking that such a large estimated quantity of water has already been released from Yamuna Fourth Order Basin since the last Ice Age. The above estimates do not account for monsoon precipitation and winter liquid precipitation from western disturbance during the past humid phase which is now extremely difficult to measure. As per present day scientific experience, a factor of 2.5 can be applied to arrive at a workable figure. Consequently, water released in the past would work out to be 1.0278 billion cubic meters from a basin area of 7090.45 sq km. In other words, 145 Million cubic meters has been released per sq. km. of Yamuna Fourth Order Basin.

The important parameters are summarized below in a tabular form :

TABLE

Parameters	Tons Fifth Order	Yamuna Fifth Order
Basin area (km^2)	4876.7	2213.75
Present day glaciated area(km^2)	152.19	-
Estimated water stored in present day glaciers (10^6 x m^3)	6840	-
Palaeo-glaciated area (km^2)	1713.13	609.38
Estimated water content stored in the past (10^6 x m^3)	3, 08,340	1, 09,620

Estimated water released - 145 x 10^6 m^3 per sq.km basin area

VEDIC SARASWATI

ORIGIN OF VEDIC SARASWATI

Palaeo-glaciation parameters have been utilized in upper reaches of the Tons valley to develop a model for the identification of the source of Vedic Saraswati. Moreover, all the scientific evidences discussed earlier in this paper point to only one conclusion that present day the Tamasa or Tons River was in fact Vedic Saraswati in its upper reaches that were fed by a large glacier. It was fed by glaciers that had descended to much lower elevations in Garhwal Himalaya than the present day level during pleistocene Ice Age. Also, parameters suggested by Bahr (1997) [13] and klemen et al (1997)[14] m were used in re-constructing model for the trunk glacier.

Saraswati Glacier : A massive trunk glacier occurred at the head of the present day Tamasa or Tons River and its snout we located at Naitwar situated on its confluence with the present day Rupin River in Har-Ki-Doon area of Garhwal Himalaya, Utterakhand. This trunk glacier has been designated as Saraswati Glacier. It is striking to record that its present day remnant is Banderpuch (Monkey tail) glacier (Fig.5 on Title Back Page).

The Saraswati glacier was 58.8 km. in length that possessed an average width of 3.5 km occupying area of 205.8 sq. km. General orientation of the trunk glacier is towards southwest but its ablation zone had acquired crescent shape. The Saraswati glacier was fed by three northern bank tributary glaciers. Adjoining its snout front, Rupin glacier system that flowed in almost southerly direction contributed its supply. Further, northeast along the Saraswati glacier, second tributary glacier was Supin Glacier system that directly joined the trunk glacier. Near the accumulation zone of the trunk glacier, Yet another glacier system viz. Jamadar - Morinda joined it. There were other smaller tributary glaciers that flowed in northeasterly direction from the southern divide and joined the trunk glacier. From Saraswati snout front, Vedic Saraswati originated as an open wall melt water channel that gradually developed into a major river system analogous to present day Bhagirathi River that originates from Gangorti Glacier in almost similar conditions (Puri and Shukla, Op. Cit.)[15]

COURSE OF VEDIC SARASWATI IN HIMALAYA

After Originating from Saraswati snout front at Naitwar, Vedic Saraswati started flowing in southwesterly direction for nearly 40 km. and It acquired very large dimensions and a very high discharge from Pabbar (Yet another glacier fed river at that time) confluence, It took a southerly course and flowed in a tortuous manner for nearly 100 km before entering Paonta

Doon area. Here, the Aglar, Yamuna and Giri joined the Vedic Saraswati. In other words, Vedic Saraswati followed the course of present day Tons River in initial Stages but a remarkable change is perceived in Paonta Doon. From here, It acquired a course that is aligned along south of Kalsi, Garibnath, Paonta and Bata valley i.e. west to southwesterly direction and flowed over raised platform of Shiwaliks. Susequently, In Bata valley, Vedic Saraswati took a southwesterly swing and entered plains through Adi Badri (Fig. 6).

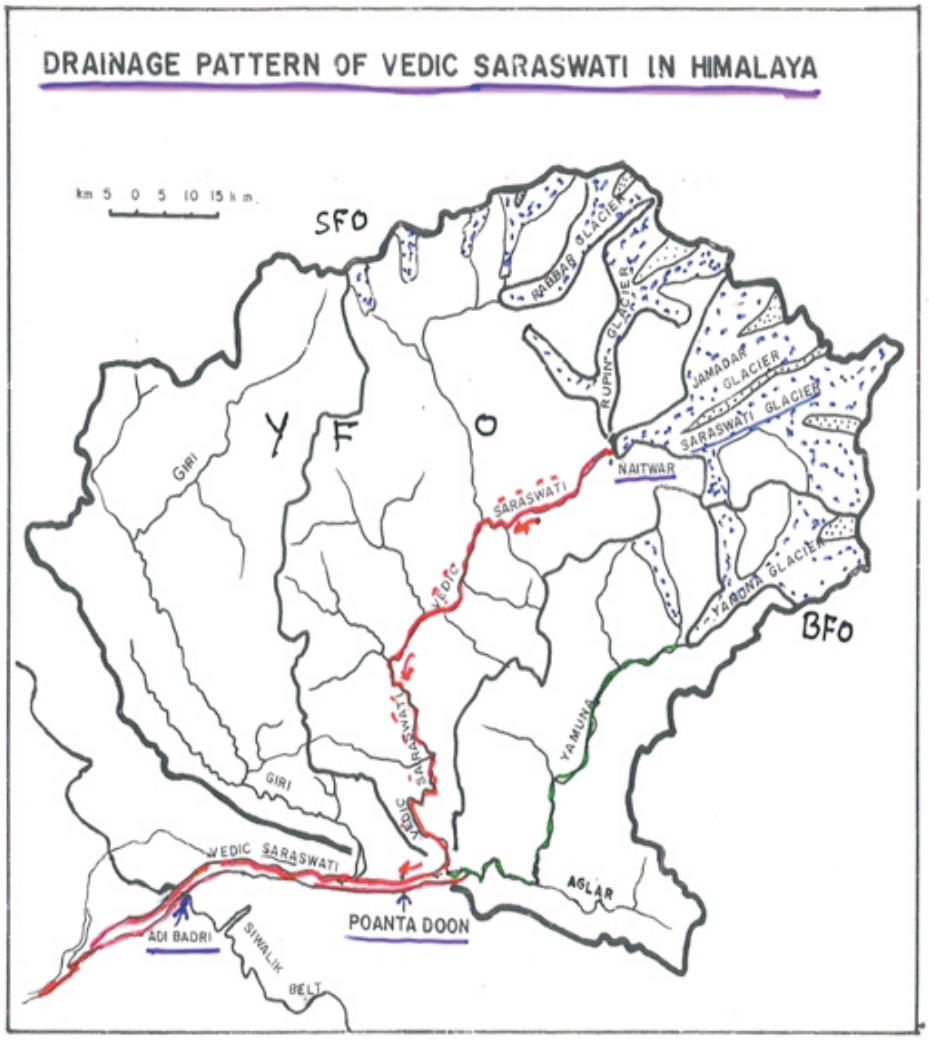

Course of Vedic Saraswati in Himalaya Fig. 6

As Mentioned earlier, the field evidences suggest that area between Garibnath-Kalesar and Markanda valley has been filled with huge pile of sediments. Thus, the main drainage of vedic Saraswati followed this terrain

and oscillated between Adi Badri and Markanda Valley due to tectonic activity whereby the Shiwalik belt was uplifted. In due course of time, It is quite possible that vedic Saraswati was entering plains from Adi Badri as well as Markanda conduits.

Significantly, SSE conduit across Shiwalik belt at Kalesar (which incidentally in now occupied by the Yamuna), was not active at all during the early stages of Vedic Saraswati evolution. Therefore, present day Yamuna River flowing in plains was also not in existence at that time though it remained confined to a tributary status only in Paonta Doon area.

After entering plains at Adi Badri, Vedic Saraswati followed southwesterly course and flowed through Kurukshetra. Thereafter, It took a westerly course and 25 km south of Patiala, It received yet another major nourishment from an old and perennial river - the satluj which joined it on its right bank. Its course has very systematically been described in the plains of Haryana, Rajasthan and Gujarat by Yash Pal et. al. (1980)[16].

Therefore, it was a consequent drainage with many obsequent tributaries like the Pabbar, aglar, Yamuna, Giri etc. It transported down huge quantity of sediments from terrain it traversed (Tons Fifth Order Basin) and deposited in Paonta Doon. During floods, It transported pebbles of metamorphic rocks and quartzite and deposited on its terraces. Hence, terraces found in Sudanwala, Bata, Garibnath, Adi Badri and Markanda valleys are remnants of degradation terraces of Vedic Saraswati.

VEDIC SARASWATI IN HIMACHAL PRADESH

It originates from the Saraswati glacier that is located in Har-ki-Doon area of Garhwal Himalaya of Uttarakhand state. However, Vedic Saraswati traverses through Himachal Pradesh when it enters Khadir Majri area in Paonta valley. It had traversed in the state till it was on the verge of entering plains of present Haryana near Adi Badri. In short, It had drained parts of districts of Sirmaur and Solan.

Terraces of Sudanwala, Garibnath, Bata and Markanda are also located in Himachal Pradesh. These terraces played a very crucial role in establishing the existence of Vedic Saraswati in Himalaya. The celebrated Bata divide is also located in Nahan area of Sirmour distt. of the state. Creation of this divide due to tectonic activity was one of the most important factors that switched off the permanent source of supply of nourishment (melt

water) from the Saraswati glacier located in Garhwal Himalaya. This scenario was one of the conditions responsible for converting a perennial river into a seasonal one.

Therefore, It was the state of Himachal Pradesh in which the mighty Vedic Saraswati River suffered geological major disasters since both the districts of Sirmaur and Solan are located nearly at the Indus and the Ganga first order basins. This Junction is an area of major activity that separates the drainage of the Indus system from the one of the Ganga system.

ARCHAEOLOGICAL SITES IN VEDIC SARASWATI BASIN

It is striking to record that no major settlement sites have been discovered west of Ropar on the Satluj. Nearly 90º swing in the present day Satluj course west of Ropar, is the result of westward migration of the Satluj from Vedic Saraswati confluence caused by neo-tectonic activity. The satellite imagery data have established that the Satluj was anchorage loci of Vedic Saraswati joining the latter at Shatrana where the width of the palaeo Channel in almost 20 km. Their are number of ancient settlements on north ---south trending palaeo-channels (Naiwals) of the Satluj course towards Vedic Saraswati in contrast to their absence west of Ropar. Misra, VN, (1994)[17] states only two sites each of Early and Mature Harappan period are found on the Satluj near Ropar. Of the late Harappan period, only seven sites are found on this river, all of them in the upper reaches close to the hills. there is complete absence of the sites once the river enters plains.

Similarly, on the Yamuna, Harappan sites of all period are conspicuous by their total absence whereas they are present in strength in the non-riverine region to the west of Yamuna and those of Mature and late harappan, particularly the latter, are present in large numbers on small tributary streams between the Yamuna and the Ganges. It will be clear from above account that the focus of the Harappan Civilization was not on the Indus and its tributaries but on Ghaggar-Hakra (vedic Saraswati) and its tributaries which flowed between the Indus and Ganges rivers.

Nearly 80% of the known sites in Bharat and Pakistan are located on the vast plain between the Indus and the Ganges, comprising the Cholistan region in Punjab (Pakistan), Rajasthan, Haryana, Panjab and western Utter Pradesh. They range in time from Hakra Ware culture of fourth - third millennia B.C. to Late Harappan culture (Including its variant, Ochre

Coloured Potterty (OCP) of the late second millennium B.C.) Two of the large settlements of Harappan civilization - Ganweriwala their in Bahawalpur and Rakhigarhi in Haryana- are located in this region. The oldest protohistoric sites viz. those of early Harappan Hakra Ware culture, are confined to Cholistan region but some of their ceramic elements are known to extend into the adjoining Ganganagar district of Rajasthan. The total absence of Harappan sites and abundance of PGW sites on the Yamuna is eloquent proof that this river was not flowing in the present channel during Harappan times but had shift to it during PGW times.

The number of sites of early Harappan culture on the Indus river is very small, Balakot, Amri, Kot Diji and Mohenjodaro in Sind, Jalalpur, Harappa, Gumla, Sarai Khola in Punjab, Juxtaposed to this distribution, the number of sites along the dry bed of Hakra - Ghaggar (Vedic Saraswati) is very dense. during 1981, 41 sites were identified on the Hakra in Cholistan desert and over 60 sites were marked on Vedic Saraswati in Panjab, Haryana and Rajasthan. Hence, the early settlements were dominantly on Vedic Saraswati Basin. The Ganeshwar metal cultures were also perhaps contemporary to this early Harappan phase. The total number of settlements increases significantly in the mature Harappan culture phase. 166 sites in Kakra, 18 Sites in Gujarat, 16 sites in Indus Velley, 24 sites in Haryana and 34 sites in Punjab. the scenario changes during the late Harappan phase wherein 72 sites in Hakra valley, 95 sites in Gujarat, 30 sites in Haryana, 85 sites in Punjab and suddenly 66 sites emerge in the Yamuna Ganga region whereas not even a single site of Mature Harappan phase existed in this region.

No Harappan Archaeological sites are located in the arid region of Rajasthan, near the salt water lakes. However, most of the sites are clustered around river banks. archaeological evidence of the settlement sites on banks of Vedic Saraswti indicates the possibility of migrations away from the banks of the river between 1900 to 1500 B.C. It appears to correlate with environmental changes analyzed using lithological data and water levels in different formations in Lunkaransar and Didwana lakes. Consequently, the population was forced to emigrate to greener pastures in Indo-Gangetic plains due to drying up of Vedic Saraswati for the reasons mentioned earlier in this paper.

Selected References

1. Rigveda 7.95.2
2. Rigveda 2.14.6

3. Rigveda 7.95.1

4. Rigveda 6.21.2-9

5. Mahabharat 95.24

6. Puri, V.M.K. and Siddique, M.A.(1996). Glacier Deformation and Strain Rate Tensor Analysis of Gangotri glacier, Utterkashi District, UP. *Proc. Symp. NorthWest Himalaya and Fore deep, Geol. Surv. Ind, Spl. Pub. 21(2), P 307-310.*

7. Puri, VM.K. and Shukla, S.P. Tongue Fluctuation Studies on Gangotri Glacier, Uttarkashi, District, U.P. Proc, Symp. Northwest. *Himalaya and Fore deep, Geol. Surv. Ind, Spl. Pub. 21(2), p 289-292.*

8. Berggren, W.A.C. (1995) Geological Time Scale. *S.E.P.M., Spl. Pub., 54. P130-212.*

9. Puri, VMK, Srivastava, Deepak and Singh, R.K.(1996). Status of *Proc. Symp. NorthWest Himalaya and Fore deep, Geol. Surv. Ind, Spl. Pub. 21(2), p 321-325.*

10. Muller, F., Caflisch, T. and Muller, G. (1977) Instructions for compilation and Assemblage of Data for World Glacier Inventory. *Temporary Technical Secretariat for World Glacier Inventory, ICSI, Zurich.*

11. Puri, VMK and Swaroop, S. (1996) . Relationship of Glacierised area and Summer Mean Daily discharge of Glacier Basins in Jhelum, Satluj and Alaknanda Catchments of Northwestern Himalaya. *Proc. Symp. North west Himalaya and fore deep, Geol. Surv. Ind, Spl. Pub. 21(2), p 315-319.*

12. Verma, B.C. (1974). Geological Mapping of Areas between Yamuna and Markanda. *Rep. Geol. Surv. Ind. (Unpub).*

13. Bahr, David B.(1997) Width and Length Scaling of Glaciers. *J.Glacio. 43(145). p 557-562.*

14. Kleman, Johan, Clas Hattestrand, Borgstrom, and Stroeven (1997). Fennoscandian palaeoglaciology Reconstruction using a Glacial *Glacial Geological Inversion Model. J.Glacio. 43(144). p 283-299.*

15. Puri, VMK and Shukla, *S.P.(1996) (Op. Cit.).*

16. Yash Pal, Sashi, Baldev, Sood, R.K. and Agarwal, D.P. (1980). Remote Sensing of the 'Lost' Saraswati River. *Proc. Bharatn Acad Sci. (Earth Planetary Science) 89 (3) p 317-331.*

17. Misra, V.N. (1994). Indus Civilization and Rigvedic Saraswati. Asian Archaeology, Helsinki. p 511-525.

Director (Rt.) Geological Survey of Bharat
113, Kotwali Bazar, Dharmshala,
Distt. Kangra-176215 (H.P)
Email : vmk1941@yahoo.co.in

देव वृत्त

मण्डी जनपद में देवता महासू

डॉ. दायक राम ठाकुर

भारतीय संस्कृति के विभिन्न आयामों एवं रूपों में देव संस्कृति का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है जिनमें देवभूमि हिमाचल प्रदेश की देव संस्कृति बहुत ही विशाल एवं समृद्ध है। यहां गांव-गांव में जगह-जगह अनेकों देवी देवताओं के मन्दिर व स्थल हैं। लोगों की इन देवी देवताओं में गहरी आस्था है। हिमाचल प्रदेश के जिला मण्डी की उप तहसील निहरी में ग्राम पंचायत कटवाहची, नाचन हल्के का अन्तिम छोर है जहां देव महासू का प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। यद्यपि देव महासू जिला शिमला व सिरमौर का प्रमुख देवता है। इसका मन्दिर मण्डी जनपद में होना, अधिक ज्ञात नहीं है। मण्डी जनपद में महासू देवता के एक नहीं तीन मन्दिर व रथ हैं। हनोल (उत्तराखण्ड) इस देवता का मूल स्थान माना जाता है। वहां के पुजारी के अनुसार यह देवता श्रीनगर (कश्मीर) से यहां आया है। महासू देवता का मूल स्थान होने से हनोल को उत्तराखण्ड का पांचवा धाम कहते हैं। बद्रीनाथ केदारनाथ, यमनोत्री, गंगोत्री, उत्तर भारत के चार अन्य प्रमुख धाम है। हनोल स्थित मूल मन्दिर में बोंठा महासू, पास ही टौंस नदी की दाहिनी ओर पवासी, जलाड़ी मोड़ स्थित बाशिक तथा चालदा महासू है। पुजारी बतलाता है कि हनोल में ये कुल मिलाकर चार भाई हैं। सिरमौर व शिमला में यह देवता चालदा महासू है क्योंकि इस देवता का रथ एवं पालकी है जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा में निरन्तर चलती रहती है। जलाड़ी माता को महासू की माँ माना जाता है। महासू के देवता की गणाई(इतिहास वृत्त) पुजारी के मुखारविन्द से केवल सैर की संक्रान्ति के दिन शिवा देहरा मन्दिर में वर्ष में एक बार सुनाई जाती है। इसके अतिरिक्त गूर, कारदार तथा गांव के बुजुर्गों से कुछ जानकारी प्राप्त होती है। जिला मण्डी में जैसा पीछे उल्लेख हुआ है कि इस देवता के कुल तीन मन्दिर एवं रथ हैं। एक करसोग तहसील की ग्राम पंचायत काहणों के सरेच नामक गांव में, दूसरा ग्रांम पंचायत बखरौट के बखरास नामक गांव में तथा तीसरा कटवाहची में स्थित है। यहां यह एक सामान्य मान्यता है कि यह देवता सर्वप्रथम गांव सरेच के महासूधार जंगल में प्रकट हुआ था। काहणों पंचायत के वर्तमान प्रधान मनोहरलाल जो स्वयं भी देवता के कारदार (कठैला) रह चुके हैं, ने देवता के यहां प्रकट होने की कथा सुनाई। उनके अनुसार गांव के लोग महासूधार जंगल में अपने पशु चराते थे। उन्होंने एक लौहार के बेटे को पशु चराने का काम दे रखा था। वह प्रात: पशुओं को लेकर वन जाता और वहां दिन भर सोया रहता, शाम होने पर पशुओं को वापिस ले आता था। कुछ समय पश्चात् एक गाय ने शाम को दूध देना बन्द कर दिया तो लोगों ने उसे हरे-हरे घास वाले स्थान पर गाय को चराने की हिदायत दी। इसके बावजूद भी गाय ने दूध नहीं

दिया। इस पर एक दिन ग्वाले को खूब डाँट खानी पड़ी। दूसरे दिन ग्वाले ने सारे दिन गाय पर नजर रखी। उसने देखा कि दिन की भरी दोपहरी में वह गाय एक पत्थर के पास खड़ी होकर दूध की धाराएं बहाने लगी। ग्वाले ने गुस्से में आकर अपने कुल्हाड़े से पत्थर पर जोर से वार किया। कहते हैं कि कुल्हाड़े का वह निशान आज भी उस पत्थर पर है जिसे कालान्तर में मूर्ति रूप में स्थापित किया गया। यह चर्चा गांव में फैल गई। गांव की एक वृद्ध महिला "माता रूहाणी" ने भी यह चमत्कार देखा और उसने पूछा कि तू कौन है? तभी आकाशवाणी हुई कि मैं देव महासू हूँ। वृद्धा ने फिर प्रश्न किया कि यदि तू देवता है तो सिरमौर आदि क्षेत्र में तू अपना नाम दिखाकर आ तब मैं तेरी पूजा करूंगी। कहते हैं कि देवता वहां से गया और आज सिरमौर आदि क्षेत्र के ये प्रमुख देवता हैं। कहते हैं कि सिरमौर के किसी क्षेत्र में लोगों ने इस देवता के नीति नियमों को नहीं माना तो देवता ने उस विशेष क्षेत्र को तहस-नहस कर दिया। देव महासू कटवाहची के पुजारी स्वर्गीय पं. अभी राम शर्मा देवता की गणाई में यही कहानी सुनाते हैं जो प्रधान मनोहर लाल ने भी बताई। महासूधार में आज देव महासू का मूल मन्दिर उसी जगह बनाया गया है जहां गाय के दूध की धारा झरने की घटना घटी थी। लेखक ने स्वयं १४ नवम्बर २०११ को इस मन्दिर के दर्शन किए। गांव सरेच के धौणकुफरी नामक जगह से बैहली अर्थात् महासूधार तक सड़क से लगभग एक घण्टे का चढ़ाई वाला रास्ता है। शिवा देहरा मन्दिर और इस मन्दिर की शैली मिलती जुलती है। काठकुणी शैली में देव महासू के सभी मन्दिर काष्ठ कला के अद्‌भुत नमूने हैं। देव महासू का यह प्राचीन मन्दिर बान के वृक्षों के बीच बनाया गया है। मन्दिर के प्रांगण में आज भी लगभग ३० फुट गहरा प्राचीन कुआं है। साथ ही देव तोगड़ा तथा देव मशाणु के पूजा स्थल हैं। सरेच में ध्रुमी माता का स्थान भी है जो वहां कमरूनाग के साथ स्थापित है। शिवा देहरा में माता ध्रुमी या धूमावती देव महासू की पत्नी मानी जाती है। सरेच में पुजारी ब्राह्मण परिवार के पास देव महासू की १०८ बीघे जमीन आज भी है और ४८ बीघे जमीन द्रुकणु नामक गांव में है जो आज ठेके पर देकर खेती व जुताई करवाई जाती है। देव महासू की सरेच में दो पत्नियां मानी जाती हैं। पहली ब्राह्मणी, जिसका एक पुत्र 'देव मशीशर' मराहड़ा (निहरी) नामक गांव में स्थित है। दूसरी पत्नी जाडी रक्सीण जिसके दो पुत्र माने जाते हैं। उन्हें रक्सेटे भी कहा जाता है। बड़ा पुत्र 'देव धड़ैस' गांव सलाणा, बेलटधार पंचायत में है। छोटा पुत्र 'देव खणीशरु' गांव काण्डा में स्थित है। तीनों अपने-अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध देवता हैं।

काहणो-सरेच में बसने के बाद देवता सनारली (करसोग) की तरफ चल पड़ा। उस समय सनारली में 'राणा सनारलु' एक अत्याचारी शासक का शासन था। गणाई के अनुसार उस समय सुकेत रियासत का राजा मदनसेन पांगणा में राज्य करता था। रास्ते में 'नालागली' नामक स्थान पर देव महासू की भेंट मांहूनाग से हुई। दोनों ने मिलकर सनारलु को मारने की योजना बनाई। उस समय वहां 'भेखल' का एक विशाल पेड़ था जिस पर प्रतिदिन सोने की बाली टीर (सिल्ला) लगती थी जिसे आज निकाल दिया जाए तो कल पुन: निकल आती थी। यही सोने की बाली राणा की समृद्धि का आधार थी। पास ही वहां पानी का एक नालू अर्थात् चश्मा था जहां केवल राणा ही स्नान कर

सकता था। सबसे पहले देव महासू ने यहां आकर स्नान करना शुरू किया। सिपाहियों ने जब देखा तो राणा को खबर कर दी गई। जब राणा देखने आया तो वहां कोई नहीं था। देवता ने बार-बार राणा को ऐसे चमत्कार किए तो राणा ने पूछा कि तू कौन है? तब देवता ने अपना परिचय दिया और उन्हें प्रजा पर तुरन्त अत्याचार बन्द करने की चेतावनी दी। पर राणा अपनी मनमानी करता रहा। अन्ततः दोनों में घमासान युद्ध हुआ जिसमें राणा मारा गया और इस क्षेत्र में पुनः सनातन संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ और लोगों का जीवन खुशहाल बन पाया। कालान्तर में उसी 'भेखल' के पेड़ से सात ढोल बनाए गए हैं जो बजाने के लिए नहीं बल्कि मन्दिर में शोभा स्वरूप दर्शनार्थ रखे गए हैं। ये ढोल ममलेश्वर महादेव (ममेल करसोग), कामाक्षा (कावो), मांहूनाग, तेवणी महादेव इत्यादि मन्दिर में आज भी देखे जा सकते हैं। आज सनारली में देव महासू की जमीन एवं मन्दिर है। मन्दिर में देव महासू व माहूनाग के रथ इकट्ठे बैठते हैं। देव महासू का बखरास वाला रथ चेरसी (तीन साल बाद) चेरसी तथा कटवाहची वाला रथ पांजी पांच साल बाद पूरे क्षेत्र का भ्रमण करते-करते इस मन्दिर में एक रात अवश्य ठहरते हैं।

सनारली क्षेत्र का जीवन खुशहाल बनाने के उपरान्त देवता 'शिवा देहरा' नामक स्थान की ओर गया। चलते-चलते रात को 'चाच' नामक स्थान में पहुंचा, जहां उस रात राक्षसों की नाटी चल रही थी। देव महासू भी राक्षसों के बीच नाटी नाचने लगा। जैसे-जैसे भोर का समय समीप आता गया, राक्षस एक-एक करके भागने लगे परन्तु महासू देव ने अपनी एक तरफ की राक्षसी व दूसरी तरफ के राक्षस को उनकी लाख कोशिशों के बाबजूद नहीं छोड़ा। दोनों ने कहा कि हम नर बलि लेते हैं। देवता ने उन्हें मनाया कि भविष्य में राक्षसी को 'जौ कर पिंदला' अर्थात् जौ के आटे का पिण्ड भेंट किया जाएगा और राक्षस को मंढे की बलि दी जाएगी और अब तुम लोक कल्याण में मेरा सहयोग देंगे। शिवा देहरा में राक्षसी जो आज 'धूमवती या धुमी' के नाम से प्रसिद्ध है, देवता की बाईं ओर और राक्षस जिसे स्थानीय बोली में 'झोर' या रक्सेटा कहा जाता है, दाहिनी ओर स्थापित हैं। धुमी हवा की देवी मानी जाती है। देव महासू की वर्षा लाने या आसमान साफ करने की कला में धुमी माता का योगदान रहता है। यहां देव महासू ने धुमी को अपनी पत्नी माना है। धुमी की माँ का नाम ढोल है, इसलिए आज भी शिवा देहरा में केवल नगाड़े बजाए जाते हैं, ढोल नहीं। उस समय इस क्षेत्र में गिने-चुने लोग रहते थे जिनमें ठुणु ठाकर तथा रूपणु भाट का जिक्र आता है। देवता ने उन्हें स्वप्न दर्शन देकर शिवा देहरा में मन्दिर बनाने का आदेश दिया। देव स्वप्न के अनुसार गांववासी मन्दिर बनाने के लिए निकले, लेकिन वे इस समस्या मं उलझे रहे कि मन्दिर कहां और किस प्रकार बनाया जाए। शाम तक कोई कार्य प्रारम्भ नहीं हो सका। सभी निराश होकर घर वापिस लौट गए। रात को उसी ब्राह्मण को पुनः स्वप्न में देवता ने कहा कि अगले दिन प्रातः जिस स्थान पर मकड़ी द्वारा बनाया नक्शा स्वरूप जाला मिलेगा, वहीं मन्दिर बनाया जाए।

कहते हैं कि वहां देवदार का एक बहुत बड़ा वृक्ष था, उसे काट कर, उसी की लकड़ी का प्रयोग करके इस मन्दिर का निर्माण किया गया। मन्दिर के अन्दर आज भी जो देवता की पाषाण

प्रतिमा है, वह उसी वृक्ष के ढूंढ पर विराजमान है। गांव के वृद्ध जनों का मानना है कि उनके बुजुर्गों ने भी यह मन्दिर ऐसा ही देखा था। १९७० के दशक में मन्दिर की मुरम्मत हुई। तब मन्दिर की छत पर स्लेट डाले गए और अन्दर लकड़ी का फर्श डाला गया।

कहते हैं कि ठुणु ठाकर के परिवार की पीढ़ी आज के पनैड क्षेत्र के भन्थल में, गुड़ाह क्षेत्र के नसरार गांव में तथा खनीऊड़ी में है जिनका कुल देवता देव महासू है। रुपणु भाट का परिवार पुजारी है जो आज बखरास नामक गांव में रहते हैं। सर्वप्रथम देवता का रथ तथा कोठी 'थाणा' नामक गांव में बनाई गए और चाच नामक खुली जगह पर देवता का मेला लगता था। मेले के दौरान कारदारों के भोजन की व्यवस्था थाणा में होती थी जो चाच से करीब ४ कि.मी. दूर है। मण्डी तथा सुकेत दोनों रियासतों के कारदार बारी-बारी से भोजन ग्रहण करने जाते थे। कहते हैं कि एक बार सुकेत वाले कारदार पहले भोजन ग्रहण करने गए और मण्डयाल इनके उपरान्त। जब मण्डयाल खाना खाने गए थे तो मौका पाकर सुकेत वाले कारदारों ने देवते का रथ उठाया और बखरौट की ओर भाग चले। जब दूसरी ओर के लोगों को पता चला तब तक वे बाझू नामक गांव, जहां मण्डी सुकेत रियासत की सीमा थी लांघ चुके थे। रियासती सीमा लांघने पर कोई दावा अदालत नहीं चलती थी। सुकेत वालों ने बखरास नामक गांव में जहां पुजारी परिवार का घर भी है, देवता का मन्दिर बनाया।

मण्डी क्षेत्र के कारदारों ने देवता का नया रथ बनाया तथा नया मन्दिर नोगी (कटवाहची) नामक गांव में थाणा से परिवर्तित किया। देवता के शीर्ष मैहरा (मुख प्रतिमा) का निर्माण करने के लिए बखरास से पुराना मैहरा मंगवाया गया, ताकि उसी के अनुरूप चांदी का नया मैहरा बनाया जा सके। इसे शिव का या सिरे का या शीर्ष मैहरा कहा जाता है। देवरथ की महत्त्वपूर्ण कला शीर्ष मैहरे में ही स्थापित की जाती है। इस मैहरे का रख-रखाव, लाना, वापिस ले जाना इत्यादि विशेष विधि तथा पूजा अर्चना के साथ किया जाता है। कहते हैं कि इस बार कटवाहची वालों ने चालाकी से शीर्ष मैहरा बदल दिया, बखरास वालों को नया मैहरा लौटाया।

इस प्रकार देवता के दो रथ एवं मन्दिर बन गए जबकि इसके गूर व पुजारी एक ही हैं। दोनों की पूजा पद्धति व व्यवस्था एक समान है। दोनों का मूल शिवा देहरा मन्दिर माना जाता है। शिवा देहरा मन्दिर देवदार के सदावहार वृक्षों के बीच एक मनमोहक स्थल हैं। पास ही एक छोटी सी प्राकृतिक झील इस स्थान के सौन्दर्य को चार चांद लगा देती है। कहते हैं कि शिवा देहरा चोटी पर पहले एक अन्य झील भी थी, परन्तु वहां का पानी जमीन में नीचे बैठ गया और आज उस जगह को फूटासर कहा जाता है। बखरौत से शिकारी माता जाने वाले श्रद्धालुओं के लिए शिवा देहरा मन्दिर व झील के दर्शन करना एक अत्यन्त सुखद अहसास है तथा यहां दिव्य संवेदनाएं प्राप्त होती हैं। दो घण्टे की थकान पल भर में मिट जाती है। शिवा देहरा में महासू देवता की मुख्य पूजा वर्ष में दो बार होती है। पहली देवता के जन्म दिन जो ज्येष्ठ मास के एक दिन पहले जिसे स्थानीय बोली में आवका कहा जाता है, संक्रान्ति के दिन देवता की जन्म धाम अर्थात् प्रीतिभोज होता है। इस दिन को

जेठार या जुठार के नाम से जाना जाता है। दूसरी पूजा आश्विन मास की संक्रान्ति को होती है। जिसे स्थानीय बोली में साजी सैर या सैर का साजा कहा जाता है। इसी दिन पुजारी के द्वारा देवता की गौण या गणाई सुनाई जाती है। आवश्यकतानुसार मन्दिर में अन्य पूजा भी आयोजित की जा सकती है। कटवाहची मन्दिर व कोठी में प्रत्येक संक्रान्ति को पूजा एवं 'झाड़ा' होता है। झाड़ा अर्थात् देवता के आवेश में चेला लोगों की समस्याओं का समाधान करता है। जब देवता किसी व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करता है तो वह व्यक्ति कांपने लगता है जिसे स्थानीय बोली में खेलना, हिंगरना या छेरना कहते हैं। तत्पश्चात् देवते का व्याख्यान होता है। झाड़े का आयोजन केवल संक्रान्ति में, देओजी में या विशेष परिस्थितियों में करवाया जाता है। देवता को मेहमान बुलाना देओजी, देवली या जात्र कहलाता है। देव महासू विशेष प्रकार के जागरण गीत जिसे स्थानीय बोली में "छैहड़ी या छैवड़ी" कहा जाता है, गाकर खेलता है। छैहड़ी गाने वालों को बाझे कहा जाता है। बाझे एक विशेष प्रकार की डमरू स्वरूप डफली तथा कांसी बजाकर गाते हैं। इस डफली को स्थानीय बोली में डैफणी या ढाखली कहा जाता है। इनके इलावा ताम्बे की काहुली तथा शंख ध्वनि के माध्यम से देवता का गूर खेलता है। जिला सिरमौर तथा उपरी शिमला में देवता के गूर को माली कहा जाता है। खेल आने पर बाझे चुप हो जाते हैं, कहते हैं कि ये बाझे देवता के साथ आए थे। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो मांहूनाग देवता विशेष प्रकार के ढोल नगाड़ों की धुन पर खेलता है। प्रतिवर्ष भादों महीने के प्रथम सप्ताह की प्रत्येक शाम को एक विशेष किस्म की देव स्तुति होती है, जिसे बेल कहा जाता है। २० ढोल नगाड़े, चार करनाले, दो रणसींगे, शहनाई, गुझु इत्यादि वाद्य यन्त्र बजाए जाते हैं। देवता को समर्पित यह बेल एक, डेढ़ घण्टा तक चलती है। जिसमें देवता के गण खेलते हैं। खेलने वाले को भणैता कहा जाता है जबकि, प्रमुख देवता केवल गूर के माध्यम से ही खेलता है। बेल का दृश्य दिव्य संवेदनाओं से भरपूर एक अनूठा अनुभव होता है। सारा वातावरण गुंजाएमान हो जाता है। जमाने के बदलते दौर व आधुनिकता की चकाचौंध में ऐसे दृश्य देखने को दुर्लभ होते जा रहे हैं। जब देवता का गूर या भणैता खेलता है तो वह अपनी पगड़ी या टोपी पीछे फैंक देता है। जिसे टोपी फेंकना कहते हैं। सामान्य दिनों में गूर या भणैता नंगे सिर नहीं रहता। खेलते वक्त गूर या भणैता अपने लम्बे बालों या जट्टाओं को बार-बार पकड़ता है। जिसका अर्थ होता है कि गूर अपने उक्त देवता को बार-बार कसम देता है कि वह पूर्ण रूप में आ कर लोगों की समस्याओं का समाधान करे और गूर की बेइज्जती न हो। देव महासू का गूर ग्राम माहुरी (बिठरी) के ब्राह्मण परिवार से बनता है। नया गूर बनाने की शिवा देहरा में एक विशेष रस्म तथा पूजा होती है। सिर में प्रमुख जटा बन्धन कमरूनाग का गूर जिसे 'लाठी' कहा जाता है, द्वारा सम्पन्न होता है। वर्तमान में पं. रामचू सातवीं पीढ़ी का गूर है। उनके अनुसार देव महासू शिव पुत्र कार्तिकेय हैं। गूर परिवार को बिठरी में २५ बीघा जमीन मण्डी के राजा द्वारा उपहार स्वरूप प्रदान की गई थी। कहते हैं कि एक बार मण्डी रियासत में भयंकर सूखा पड़ा। वर्षा बरसाने के अनेक उपाए किए गए। राजा के आदेश पर विभिन्न देवताओं के गूर बुलाए गए। आखिर में देव महासू के गूर को भी बुलावा मिला

और तत्कालीन गूर पं. कृपा राम शर्मा को मण्डी बुलाया गया।

राजा द्वारा राजमहल में गूर के लिए भोजन की व्यवस्था की गई। भोजन के समय राजा ने कहा कि हे गूर देवता! हम भोजनोपरान्त अपने हाथ वर्षा के पानी से धोना चाहते हैं। भोजन का प्रथम निवाला गूर के मुंह में घूमता रहा। डर के मारे गूर भोजन करना भूल गया। उसने तन-मन से देव महासू की स्तुति की। कहते हैं कि नीले आसमान में एक छोटे से बादल का टुकड़ा आया, बिजली कड़की और गर्जना के साथ झमाझम वर्षा होने लगी।

मण्डी के बड़े देवता कमरूनाग के उपरान्त देव महासू भी वर्षा के देवता के रूप में विख्यात है। कई बार जब कमरूनाग के गूर इस कला में सफल नहीं हो पाते हैं तो वे भी देव महासू के गूर के पास आते हैं। गूर परिवार के माहुरी स्थित मूलघर में दो विशेष प्रकार के गोल पत्थर हैं, जिन्हें स्थानीय बोली में कुप्पु कहा जाता है। वास्तव में ये दोनों कुप्पु वर्षा लाने व आसमान साफ करने (बीझी बादली) के अन्तिम उपाय के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। ये दोनों कुप्पु पं. काहन चन्द तथा ख्याली राम शर्मा नामक गूरों द्वारा 'भरमेहर' नामक ढांक में स्थित गुफा से खेल कर लाए गए थे। एक अन्य मतानुसार ये कुप्पु अर्थात् बीझी बादली की कला करसोग स्थित ममलेश्वर महादेव मन्दिर से लाई गई है। अनावृष्टि (आकाल) या अतिवृष्टि की स्थिति में बिल्कुल आखिर विकल्प के रूप में विशेष पूजा के उपरान्त इन कुप्पुओं को पानी में डाला जाता है तो वर्षा होती है यदि इन्हें साफ कराया जाए तो आसमान साफ हो जाता है। सामान्य दिनों में इन्हें छूना व देखना भी प्रतिबन्धित है। इनकी पवित्रता रखने व इन्हें दुरुपयोग से बचाने के लिए पूर्व गूरों ने इन्हें छुपा दिया था, परन्तु इन्हें पुनः खोजकर घर में रखा गया है। देव महासू बहुत ही शुद्ध देवता माना जाता है। जहां से भी इसका रथ गुजरता है, सबसे आगे गौ मूत्र छिड़कता हुआ व्यक्ति चलता है। कहा जाता है कि एक बार मण्डी के राजा ने रियासत के सभी देव रथों को शिवरात्री मेले (जिसे डोल जात्रा भी कहा जाता है) में बुलाया। अतः देव महासु को भी मजबूरन ले जाना पड़ा। परन्तु रास्ते में इतनी ओलावृष्टि हुई कि रथ को वापिस कटवाहची लाना पड़ा। ऐसा इसलिए हुआ कि देवता के अनुसार शिवरात्रि में उपयुक्त पवित्रता नहीं रह पाती।

कटवाहची में देवता की सात हारें है। हार का अर्थ है देवता का एक विशेष प्रजा क्षेत्र। तीन वर्ष पश्चात् देवता सम्पूर्ण हार में भ्रमण करता है। लोग मन्नत पूरी होने पर देवता को घर में भी बुलाते हैं। कटवाहची में देव महासू सहित तीन भाई तथा दो बहनें मानी जाती हैं। इनके छोटे भाई में भूमण्डल ग्राम स्थित गीहनाग, बिठरी स्थित महादेव तथा छोटी बहनों में चिण्डी (बखरौट) स्थित चिण्डी माता एवं ग्राम बडार स्थित बडार माता है। तीनों देवताओं का मेला प्रतिवर्ष वैशाख माह के १९,२०,२१,२२ प्रविष्टे को कटवाहची में लगता है जिसमें हजारों श्रद्धालु दूर-दूर से आते हैं। सावन मास के २० प्रविष्टे को चण्डी माता का मेला चकरण्ठा (बखरौट) नामक स्थान में तथा २५ प्रविष्टे को बड़ार नामक स्थान पर बडार माता का मेला लगता है। जब दोनों बहने अपने-अपने मेले में नाचती हैं अर्थात् लोगों द्वारा उनके रथ को नचाया जाता है तो शिवा देहरा चोटी पर धुन्ध छा जाती

है ताकि बड़ा भाई उन्हें नाचता हुआ न देख सके। देवता की अपनी सम्पूर्ण प्रबन्ध व्यवस्था है जिनमें निम्न कारदार प्रमुख भूमिका निभाते हैं : गूर, पुजारी, कठैला, कटवाल, पालसरा, बाझे, कडु (देवता का प्रमुख बजन्तरी), करनालची, छतरैही, हेसी, भणैता, बाजगी, शगड़ैती (देवरथ के आगे आग की अंगीठी चलाई जाती है, उठाने को शगड़ैही कहते हैं), रणसिंगची, चौकीदार इत्यादि।

देव महासू का नाम महासू कैसे पड़ा? पं. सन्तराम के अनुसार भगवान गणेश ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से अपने माता-पिता शिव-गौरा की परिक्रमा करके अग्रिम पूजा का स्थान पाया तो कार्तिकेय स्वामी बहुत दु:खी हुए। उन्होंने तलवार अपने शरीर से मांस काटना शुरू किया। कुछ ही देर में मांस की चार ढेरियां लग गईं। भगवान शिव ने मांस की चार ढेरियां समुद्र में फेंक दी। समुद्र में उल्लनाग, विमल नाग, बासुकी नाग तथा भडूवान नाग वास करते थे। उन्होंने उस मांस का भक्षण किया जिससे उनके पेट से चार राजकुमार नाग रूप में उत्पन्न हुए। जिन्हें चार मांसू कहा गया तथा कालान्तर में उन्हें महासू कहा जाने लगा। चारों के हाथों में तलवारें थीं। इन्हें नागवंशी कहते हैं। उनके नाम वाशिक, पवासी, वोहा तथा चालदा मासू रखे गए। कार्तिक स्वामी के शरीर से जितनी खून की बून्दें गिरी उनसे अनेकों देवता व गण पैदा हुए।

वास्तव में देव महासू ने जिला मण्डी के इस दुर्गम क्षेत्र को खुशहाल बनाया। सत्य भाव से इन्हें याद करने पर यह मनचाही कामना पूर्ण करते हैं।

सन्दर्भ संकेत एवं साक्षात्कार स्रोत

१. सन्त राम, चार मासू, जे.पी.सी. बम्बई।

२. पं. अभी राम शर्मा, देवता के पुजारी, ग्रांम बखरास, तह. करसोग, जिला मण्डी (हिमाचल प्रदेश) २०११ में इनका स्वर्गवास हो गया है।

३. पं. राम चू शर्मा, ग्राम बिठरी, डा. कटवाहची, उप तहसील निहरी, जिला मण्डी (हिमाचल प्रदेश) देवता के गूर।

४. मनोहर लाल, प्रधान ग्राम पंचायत काहणो, तह. करसोग, जिला मण्डी (हिमाचल प्रदेश)

५. केशव राम ठाकुर, कारदार, ग्राम कुटेड, डा. कटवाहची, उप तहसील निहरी, जिला मण्डी (हिमाचल प्रदेश)

६. नानक चन्द ठाकुर, कारदार, ग्राम कुटेड, डा. कटवाहची, उप तहसील निहरी, जिला मण्डी (हिमाचल प्रदेश)

७. दिनेश, ग्राम बैहली (महासूधार) काहणे करसोग, जिला मण्डी (हिमाचल प्रदेश)

सह. प्रध्यापक, राजनीति शास्त्र
राजकीय महाविद्यालय करसोग,
मण्डी (हि.प्र.)

क्रान्तिवीर

भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के महान शहीद राजकुमार प्रताप सिंह

मौलू राम ठाकुर

भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के शहीदों में कुल्लू का राजकुमार प्रताप सिंह भी था, जिसे भारत में अंग्रेजी प्रशासन के विरुद्ध विद्रोह करने के आरोप में ३ अगस्त, १८५७ के दिन धर्मशाला में फांसी दे दी गई थी, परन्तु इतिहास में उसका उल्लेख नहीं आता हालांकि "पंजाब सरकार म्यूटिनी रिकार्डज़ खण्ड सात और आठ" में इसका पूरा विवरण उपलब्ध है। कुल्लू के राजा प्रीतम सिंह (१७६७-१८०६) में मरने पर उसका सबसे बड़ा बेटा विक्रम सिंह राजा बना। दूसरे बेटे झगड़ सिंह को शांगरी की जागीर दी गई और तीसरे बेटे किशन सिंह को बदाह की जागीर दी गई। विक्रम सिंह सन् १८०६ में कुल्लू का राजा बना और १८१६ में बिना किसी वैध सन्तान के उसकी मृत्यु हो गई। विधि-संगत वारिस न होने के कारण उसका भाई किशन सिंह राजा बना। मण्डी के राजा ईश्वरी सेन को यह निर्णय पसन्द नहीं था। उसने विक्रम सिंह के एक रखैल के साथ पैदा हुए अवैध पुत्र अजीत सिंह को उकसाया, उसकी सहायता के लिए सेना भेजी, किशन सिंह को बन्दी बनाया तथा बुगा गढ़ में कैद रखा, जहां उसकी मृत्यु हो गई। किशन सिंह की पत्नी छोटे बच्चे प्रताप सिंह को गोद में लेकर अपने मायके कांगड़ा चले गई, जहां राजा संसार चन्द ने उसे गुजारे के लिए द्रम्मण की जागीर दी।

१८२८ में महाराजा रणजीत सिंह ज्वालाजी आया। प्रताप सिंह की मां महाराजा से मिली और उसे पूर्ण स्थितियों से अवगत कराया। महाराजा मां बेटे को लाहौर लाया। महाराजा रणजीत सिंह के संरक्षण तथा सिख दरबार के शाही वातावरण में होनहार बालक प्रताप सिंह साहसी, वीर योद्धा और प्रतिभाशाली नौजवान के रूप में बड़ा हुआ तथा सन् १८४६ में अंग्रेजों और सिखों के बीच हुए युद्ध में प्रताप सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ते हुए सिखों की पहाड़ी सेना का नेतृत्व किया था। यह तथ्य पंजाब सरकार म्यूटिनी रिकार्डज़ से स्पष्ट होता है। मेजर एडवर्ड लेक, कमिशनर एवं अधीक्षक ट्रांस सतलुज स्टेटस् को भेजी अपनी जांच रिपोर्ट में मेजर रेनल टेलर, डिप्टी कमिशनर कांगड़ा ने लिखा कि प्रताप सिंह मुकड़ी (फिरोजपुर से २० मील दूर) के युद्ध में मारा गया है तथा वर्तमान प्रताप सिंह झूठा, धोखेबाज़ है। (देखें परिशिष्ट च) इसके विपरीत, यही रिपोर्ट जब मेजर एडवर्ड लेक ने आर. मोंटगुमरी, जूडिशियल कमिशनर, पंजाब को भेजी तो उसने लिखा, "प्राय: यह माना जा रहा है कि असली प्रताप सिंह अलीवाल (लुधियाना से १५ मील नीचे) के युद्ध में मारा जा चुका है। परन्तु जांच कमिशन के सामने प्रताप सिंह ने ब्यान दिया कि, ''मैं न मुड़की में मरा था न अलीवाल में, बल्कि में अलीवाल में बुरी तरह घायल हुआ था तथा मैंने अंग्रेजों के ही औषधालय में उपचार करवाया था।" वास्तव में उसने अंग्रेजों के एक मृत सैनिक की वर्दी पहन ली थी और निर्भय इलाज कराता रहा था। मुड़की स्थान पंजाब के फिरोजपुर शहर से बीस मील (३२

कि.मी.) दूर स्थित है। तथा यहां का उक्त युद्ध १८ दिसम्बर, १८४५ में हुआ था। कनिंघम का कहना है कि गुप्तचरों की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण अंग्रेजों को यहां हानि उठानी पड़ी थी। अलीवाल स्थान लुधियाना से १५ मील (२४ कि.मी.) नीचे स्थित है। यहां का युद्ध २८ जनवरी, १८४६ को हुआ था। इन दोनों युद्धों में पहाड़ी राज्यों (वर्तमान हिमाचल) के सैनिकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध सिखों की ओर से लड़ते हुए विशेष भूमिका निभाई थी और इन क्षेत्रों में वह पहाड़ी सेना का प्रमुख था।

इसी बीच कुल्लू के राजा अजीत सिंह की भी लावारिस मृत्यु हो गई। सिखों ने अजीत सिंह के चचेरे भाई ठाकुर सिंह को केवल बजीरी रूपी का राजा बनाया। ठाकुर सिंह के १८५२ में मरने पर उसका दासी–पुत्र ज्ञान सिंह राज गद्दी पर बैठा, परन्तु अवैध सन्तान होने के कारण अंग्रेजों ने उसकी पदवी राजा से घटा कर राय कर दी। प्रताप सिंह इन सारे हालात पर नज़र रखे हुए था। अंग्रेजों के विरुद्ध सारे भारत में फैल रहे असन्तोष की भी उसे पूरी जानकारी थी। यहां की परिस्थितियों का मौके पर अध्ययन करने और लोगों के आन्तरिक विचारों को जानने के उद्देश्य से उसने साधु के भेष में कुल्लू का भ्रमण करना आरम्भ किया। काईस में कुछ लोगों ने उसे पहचान लिया और उसे रानी दादी-माँ के पास लाए जिसने इसकी पहचान पुष्ट की तथा उसे बदाह नामक स्थान पर भेजा। यहीं उसने सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई और लाहौर वापस लौटा। लाहौर से प्रताप सिंह शांगरी आया जो कुल्लू के राजाओं की जागीर थी और जिसके मुख्यालय आनी (औटर सिराज) तथा सतलुज नदी के दूसरी ओर बड़ाग्रां में थे। औटर सिराज कुल्लू का हमेशा मजबूत गढ़ रहा है जहां के कपूरू जैसे योग्य बजीर हुए हैं और यहीं वह अपनी स्थिति सबल तथा सक्षम बनाने में जुट गया। लोगों ने उसका स्वागत किया और अस्त्र-शस्त्र, अन्न-धन, दारू-बारूद, जन–बल देकर उसकी सहायता की।

प्रताप सिंह का शांगरी में ठहरने का एक और भी प्रयोजन था। शांगरी शिमला के निकट है जहां राम प्रसाद बैरागी भी इसी क्रान्ति में जुटा था। दोनों एक-दूसरे को पहले से जानते थे और बहुत सम्भव है कि "चपाती-आन्दोलन" उन्होंने ही आरम्भ किया था, क्योंकि विद्वानों का मानना है कि यह चपाती लाखों आदमियों के हाथों-हाथ गुजरती हुई सारे भारत में घूमने के बाद भी वैसी की वैसी अटूट पड़ी थी, इससे लगता है कि यह पहाड़ों के विशेष अन्न की बनी हुई थी। सम्भव है कि यह कोदरे और सिउल-सरयारा आदि लेसदार अन्न की बनी थी जो पहाड़ों में ही उपलब्ध है। ये दोनों वीर एक जैसी गलती के शिकार हुए। राम प्रसाद ने अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाने के उद्देश्य से मैदानों में पंजाब के कुछ राजाओं को सहायता के लिए पत्र लिखे जो मि. बारनेज, पहाड़ी राज्यों के कमिशनर के हाथ लगे। इन पर बैरागी जी के हस्ताक्षर थे, जिसे पकड़ा गया और अम्बाला में फांसी दी गई। पत्र-वाहक पहले ही भाग चुके थे।

प्रताप सिंह ने अपने प्रयत्न जारी रखे। लाहौर में सिख दरबार की शासन पद्धति के ज्ञान तथा उच्च पदाधिकारियों के साथ सम्पर्क ने उसे बड़ा सजग, सतर्क, सचेत तथा साधन सम्पन्न बनाया तथा शीघ्र ही उसके पास भारी संख्या में लड़ाकू जवान और अस्त्र-शस्त्र का भण्डार इकट्ठा हो गया। उसे ज्ञात था कि १८४१ में कुल्लू में भारी लूटमार के बाद जब सिख सेना लाहौर वापस मुड़ी थी तो कुछ अस्त्र-शस्त्र यहीं छोड़ गई थी। उसने सूरतराम वजीर के सहयोग से उसे हथियाने के

प्रयत्न किए, परन्तु वह उसमें सफल नहीं हुआ। प्रताप सिंह के अस्त्र-शस्त्रों के बारे में रिपोर्ट करते हुए मेजर टेलर लिखता है, "मुझे यह पहले ही सूचित करना चाहिए था कि विद्रोही प्रताप सिंह के संकेत पर हथियारों, बंदूकों, तलवारों, जम्बूरों आदि का बहुत बड़ा भण्डार तथा भारी मात्रा में गोली-बारूद कुल्लू में मिल गया था जिन्हें नष्ट कर दिया गया है।''

अपनी ओर से सारी तैयारियां किए जाने के बाद प्रताप सिंह ने, राम प्रसाद बैरागी की तरह कुल्लू, लाहुल, स्पिति, औटर तथा इन्नर सिराज के सभी नेगियों (जैलदारों) कारदारों और माफीदारों को पत्र लिखे कि अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई करने के लिए पूरी तैयारी के साथ औटर सिराज पहुंचो। इस पत्र की एक प्रति नायब तहसीलदार, पलैच, बंजार के हाथ लगी, जिसने इसे एसिस्टेण्ट कमिशनर कुल्लू तक पहुंचाया। म्यूटिनी रिकार्डज़ खण्ड सात, भाग एक के पृ. ३३५ पर इस पत्र की इस प्रकार व्याख्या की गई है – ''प्रताप सिंह द्वारा जिला के इस प्रान्त के सभी मुखियों को पत्र लिखे गए थे जिनमें उसने उन्हें और उनके साथियों को तुरन्त आने और हथियार के साथ आने के लिए कहा गया था। उसने इन्हें राजाओं के प्रति सत्य-निष्ठ और वफादार रहने की जिम्मेदारी की याद दिलाई थी। उसने इन्हें विश्वास दिलाया कि ऐसा समय फिर नहीं आएगा। उसने इनकी धार्मिक भावनाओं को भी उकसाया है। उन्हें यह भी बताया गया कि देशभर में अंग्रेजी राज समाप्त होने वाला है और यूरोप के लोग बड़े शहरों में मारे जा चुके हैं।'' (देखें परिशिष्ट ग)।

यह पत्र मिलते ही एसिस्टेंट कमिशनर ने धर्मशाला से सैनिक दल मंगवाया। बशलेऊ जोत के आस-पास लड़ाई हुई। लड़ाई का कोई विवरण प्राप्त नहीं है। इतना स्पष्ट है कि प्रताप सिंह, उसका साला बीर सिंह और उनके कुछ साथी पकड़े गए। उन्हें धर्मशाला ले जाया गया। उन पर अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का आरोप लगाया गया। जांच आयोग में डिप्टी कमिशनर, धर्मशाला, एसिस्टेंट कमिशनर कुल्लू और एक अन्य सहायक आयुक्त शामिल थे। आयोग के सामने मात्र तीन दिन तक सुनवाई हुई और तीन अगस्त १८५७ को सायं चार बजे धर्मशाला, प्रेड ग्राउंड (आज पुलिस मैदान) में प्रताप सिंह और वीर सिंह को सरेआम फांसी दी गई। प्रताप सिंह की माँ और पत्नी रणपतु वहीं थीं। उनके साथियों में से सरदूल को १४ वर्ष, काशी को १२ वर्ष, थुला को १२ वर्ष, मानदास को १० वर्ष, सूरत राम को ८ वर्ष, केशव राम को ४ वर्ष तथा देवी दित्ता को ३ वर्ष कारावास की सजा दी गई। प्रताप सिंह की पत्नी रणपतु को दी गई जागीर और पेंशन जब्त की गई। उसे कुल्लू से बाहर निकाल दिया गया तथा उसके रिहायशी भवन को जमीन तक उखाड़ दिया गया। यहां म्यूटिनी रिकार्डज़ के सम्बन्धित संदर्भों को मूलरूप में नीचे दिया जा रहा है।

परिशिष्ट क

Punjab Government Records Mutiny correspondance Vol. VII Part I

152. From A. Brandreth Esquire, Offg. Secretary to the Chief Commissioner, Punjab to the Secretary to the Government of India, Foreign Department, No. 38 dated 13th August, 1857.

Capture and execution of one Pertab Singh for inciting rebellion in Kullu.

I am directed by the Chief Commissioner to submit a copy of a report of the capture and execution by Major Taylor, Deputy Commissioner of Kangra of a Rajpoot named Pertap Singh who endeavored to induce the people of kooloo to rise against the British Government.

परिशिष्ट ख

Enclosure (1) to 152

From R. Montgomery, Esquire, Judicial commissioner, Punjab, to A Brandreth Esquire officiating Secretary to the Chief Commissioner, Punjab, No. 279, dated Lahore 10th August, 1857.

I have the honour to forward in original for the perusal of the Chief Commissioner the correspondence noted in the margin showing the results of the commission which sat to decide the charges of rebellion against Pertap Singh, Veer Singh, and other inhabitants of kooloo charged with the attempt to excite rebellion against the British Government.

2. The promptitude with which this attempt at rebellion has been met and checked reflects great credit on Major Hay and the authorities generally.

3. I trust those entitled to rewards will have been dealt with liberally. I shall request the Commissioner to send me a list showing the rewards and promotions bestowed on the deserving.

परिशिष्ट ग

Enclosure (2) to 152

From Major Edward Lake, Commissioner and Superintendent, Trans-Sutlej States to R. Montgomery, Esquire, Judicial Commissioner, Punjab No. 173, dated Jullundur, 7th August, 1857.

I have the honour to report for the information of the Chief Commissioner that one Pertab Singh, aided by his brother-in-law, Beer Singh attempted to induce the pepole of Sheoraj in Kooloo to raise in rebellion against the British Government. The plot was timely discovered by the vigilance of the local authorities. the two individuals above named were apprehended as well as their emissaries, upon whom were found

papers addressed to the headmen of the province by Pertab Singh in which he told them and their followers to come quickly and to come armed. He reminds them of the hereditary claims of his family to their loyalty, he assured them that such an opportunity was not likely to occur again, and be appealed to their religious feelings. His emissary further acknowledged that his instructions were to make known throughout the country that English rule was at an end and the Europeans at all large stations massacred.

2. In connection with these proceedings it is necessary to state that Pertab Singh claimed to be by lineal and hereditary descent the rightful Chief of Kooloo in supersession of Rae Gyan Singh whose father Thakoor Singh had been recognized as Raja by the Sikhs. He argued that the illegitimacy of Gyan Singh's father was in itself sufficient to bar his claims to succeed to a principality of rajpoots among who bastards are never allowed to succeed to property. Another remarkable circumstance connected with this individual was the doubt extensively entertained regarding his identity. It was generally supposed that the real Pertab Singh had been killed in the battle of alleewal and a handsome provision was made for his widow by our government when Kooloo passed into our hands. Nothing was heard of Pertab Singh from 1846 to 1855, When suddenly the individual now alluded to made his appearance in the garb of a fakeer and set forth that he was the missing Pertab Singh, that he had been severely wounded at Aleewal, but had been treated for his wounds in one of our dispensaries, on leaving which be wandered about as a fakeer. Opinion was much divided as to his being the person he represented himself to be; his wife and brother acknowledged him. This may have been from interested motives, for they supposed that his recognition would bring them increased allowances and Jageer.

3. On two previous occasions Pertab Singh had attempted in Kooloo to procure a popular demonstration in his favour, and both times he had been warned against making any public appeals of this nature. Taking all these circumstances into consideration. I was satisfied that Pertab Singh's intentions in making this further appeal to the people were treasonable. I therefore directed the Deputy Commissioner Kangra to associate with himself his assistants and to form a commission for the trial of Pertab Singh, Beer Singh and other who were mixed up in the affair, and who from the proceeding sent for my perusal appeared to know that an attempt was about to be made to subvert the British Government. With my letter of

instructions was sent a memo the copy of which is annexed.

4. I directed that the Jageer and pension of Runputtoo wife of Pertab Singh, should be confiscated pending a reference to government proposing to allow her a smaller pension sufficient to keep her and her infant son from starving. I directed that arrangement should be make for withdrawing her from kooloo, in order that the home in which Pertab Singh lived might be razed to the ground, and that its ruins might remain as a monument of his unsuccessful attempt at rebellion.

5. I have now received a letter No. 6 dated Kangra, 3rd August, 1857 from the Deputy Commissioner of Kangra to my address, the copy of which is annexed, giving an account of the proceedings of the commission, by which you will observe that a capital sentence passed upto Pertab Singh and Beer Singh was duly carried into execution and various sentences were awarded to other offenders. Major Taylor has carefully prepared an English abstract of the investigations made in Kooloo which leave no doubt of the guilt of the principals and their accomplices. If you desire it, these can be sent for perusal.

6. I would take this opportunity of acknowledging the vigilance of Major Hay, who from the first directed that a strict watch should be kept on Pertab Singh's proceedings. The local authorities are also entitled to praise for their timely detection of this plot and for their well managed apprehension of the offenders.

परिशिष्ट घ

Enclosure (3) to 152

Extract of a memorandum by the commissioner, trans-Sutlej states, filed with the abstract of Pertab Sindh's case.

To Major Hay the acknowledgments of the Government are due, as his vigilance in watching Pertab Singh led in a great measure to the timely detection of the plot.

परिशिष्ट ङ

Enclosure (4) to 152

From Major R. Taylor, Offg. Deputy Commissioner, Kangra, to Major Edward Lake, Commissioner and Superintendent, Trans Sutlej States letter dated Kangra 3rd August, 1857.

I have the honour to inform you that, in accordance with the directions contained in your letter No. 250, dated 24th ultimo immedeately on my return from Noorpore I formed a Commission, associating with my self both my Covenanted Assistants, for the trial of Pertab Singh and others who had attempted to raise rebellion in Kooloo.

The sittings of the commission occupied three days, the case of 21 prisoners having to be examined on the third day the proceedings closed at 2 o'clock p.m. and 4 p.m. Pertab Singh and Beer Singh were executed, and the following terms of imprisonment were awarded to other concerned :

Surdool	14 years	Soorut Ram	8 years
Kashee	12 years	Kashub Ram	4 years
Thulla	12 years	Devee Ditta	3 years
Man Dass	10 years		

The remainder released on a year's security after witnessing the execution.

3. Your orders with regard to the confiscation of the property and destruction of the houses of the principal individuals concerned will be carried out and a further report made on the subject.

4. Also with regard to the rewards recommended a further report will be submitted.

5. I may mention that the extreme penalty of Act XIV of 1857 was awarded to the two principals only in consideration of the fact that the object of the intended rising was directed less against the British Government than a rival faction.

6. The principals by false representations were making the rest tools wherewith to accomplish their own purposes.

7. I trust the examples made will be found sufficient to overawe the simple population of the Kooloo valley.

परिशिष्ट च

Punjab Government Records Mutiny correspondance Vol. VIII Part I

20. From Major Reynell Taylor, Offg. Deputy Commissioner, Kangra to Major Edward lake, Commissioner and Superintendent, Trans-Satlej States, No. 38 Dated Kangra, 15th August, 1857.

14. In the beginning of June a pretender to the Raj of Kulu one Pertab Singh, made an attempt to accomplis a rising in his favour in Kooloo and Seoraj. This man was a pretender too deep, as the man whom he

personated, the original Pertab Singh, had been twice pronounced himself to be spurious, Having been purchased by this mother and her brothers in infancy and paraded to the world as son of Kishan Singh, a man who had some claims to the Raj. The original Pertab Singh, therefore, though commonly receiving the honorary appellation of mean, had been twice set aside under the Sikh rule. He subsequently followed Thakoor Singh, Raja of Kullu, to the field as a Ghorchurra and is supposed to have been killed at Moodkee. After a longh interval the late pretender appeared professing to be Mean Pertab Singh. After some demur he was received by the widow of Mean Pertab Singh and her relations. He made several attempts to bring himself into notice, but was set aside and warned that unless he remained quiet, he would be ejected from the country and punished.

Major Hay, Assistant Commissioner in Charge of Kulu, aware of the man's character, had on the occurrence of disturbances and uneasiness bellow warned the Police officials to be on the alert in keeping a watch upon his proceeding, and consequently the Naib Tehseeldar of Seoraj, receiving intelligence that some letters had been sent by Pertab Singh to the Negees of Seoraj, was enable to intercept them, and acting with a great promptitude secured the messengers with the letters upon them, and immediately sending intelligence to the Tehseeldar of Kulu, Pertab Singh and his chief confederates were secured without difficulty.

It appeared on the subsequent inquiry that a large body of the Negees of Seoraj were decidedly favorable to Pertab Singh and, if his insurrection had shown any head, would have joined him. However, the character of the whole movement was rather a determination to set up Pertab Singh against the rival and right representative of the Raj, Viz Gyan Singh son of Thakoor Singh, and this under the full belief that our hold on the country was immediately to cease. Men had returned from Shimla and reported that the English had fled from thence. The intended movement was not therefore, so much directed against the British Government as to secure the country from falling into the hands of a rival faction. This was the feeling of the Seoraj people. The Kulu People, on the other hand, were almost entirely for Gyan Singh.

Pertab Singh and his accomplices were tried by your orders by a commission composed of myself and my two Assistants. Pertab and his principal adviser Beer Singh were condemned to death and executed. The rest were punished with various terms of imprisonment. Three of the party have died since leaving Kulu, and Major Hay is of the opinion that the

terms awarded are too long of Kulu men, and the probability certainly is that if the whole terms are enforced not one of the 15 men would ever see the valley again, but when better times come, as please God they will, I would recommend portions of the sentences being remitted. The real schemers, who probably knew the true state of affairs at Lahore and else where very well, but who would by taking advantages of the ignorance of the people have raised the country upon us, have died upon the scaffola; the rest were mere tools in their hands influenced by clannish feeling, but not imbued with any especial dislike to our Government.

In the course of proceedings I had to make enquiry from the inhabitants of Bungahal as to whether Pertab Singh had written letters to them. Their reply was a hearty denial. "What should they", they said, "Have to do with Rajahs; they never enjoyed any peace or comfort under them, they were rack-rented and seized for forced labour without wages, now they enjoyed peace and had a margin of money left after paying the Government revenue, so they were little likely to listen to overtures from a class they were well rid off."

22. Major Hay has succeeded in arresting Ashum, the second emissary of Pertab Singh, who had at first escaped. Thus all concerned in the attempt in kulu have been arrested or punished. Pertab Singh family have arrived at Kangra, and with them Major Hay write, the memory of Pertab Singh and his attempt will probably depart from the valley.

The Kulu and Seraj guard was in the first outset of disturbance reduced from 80 to 65 men. Since the attempt at insurrection I have given Major Hay 50 irregulors levies and in his isolated position I think them absolutely necessary from his safety and usefulness. Kulu is 90 miles from this, and the communications during rains are of the worst description, and he has to seize rebels, eject families, raze houses etc, while the Police Battalian guard, having the treasure in charge, cannot leave the Tehseel.

I should have mentioned before that, on information given by the rebel Pertab Singh, a large repository of arms, matchlocks, swords, Zumboorah etc. together with a large store of power and lead, was found in Kulu. The power has been destroyed and the arms broken up.

अध्यक्ष
देवप्रस्थ साहित्य एवं कला संगम
देवप्रस्थ भवन, ढालपुर कुल्लू (हि.प्र.)

राष्ट्रभाषा

महर्षि दयानन्द का राष्ट्रभाषा उन्नयन

डॉ. कर्म सिंह

उन्नीसवीं शताब्दी की दिव्य विभूतियों में राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री केशवचन्द्र सेन, परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द आदि के नाम स्वर्णिम अक्षरों में उत्कीर्ण हैं। इनमें भारतीय पुनर्जागरण के आन्दोलन को सही दिशा और गति प्रदान करने में महर्षि दयानन्द का नाम अग्रगण्य है। वे एक समाज सुधारक, राजनीति निष्णात, प्रखर दार्शनिक, समालोचक, साहित्यकार, शास्त्रार्थ महारथी, स्वतन्त्रता के मन्त्रदाता, नारी जाति के उद्धारक सामाजिक कुरीतियों के निवारक, वैदिक साहित्य को पुन: प्राचीन आधार प्रदान करने वाले, आर्ष साहित्य के प्रचारक, वेद भाष्यकार और राष्ट्र भाषा हिन्दी के उन्नायक थे। उन्होंने वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दी को अपनाया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की मातृभाषा गुजराती थी और वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे तथा वेदप्रचार के प्रारम्भिक वर्षों में प्रवचन, शास्त्रार्थ व वार्तालाप संस्कृत भाषा में ही करते थे। अपने बंगाल प्रवास के समय ब्रह्मसमाज के केशवचन्द्र सेन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के आग्रह पर उन्होंने तत्कालीन लोकभाषा के रूप में प्रचलित हिन्दी को सन् १८७३ के बाद अपना माध्यम बनाकर सन् १८८३ तक अर्थात् कुल नौ वर्ष के अत्यल्प काल में हिन्दी में लगभग तीस ग्रथों की रचना की। महर्षि दयानन्द बाल्यकाल से ही बच्चों को हिन्दी भाषा का ज्ञान कराने की अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं :

"जब पांचपांच वर्ष के लड़का-लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करायें, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।

इससे स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानन्द अंग्रेजी, जर्मन आदि विदेशी भाषाओं को पढ़ने-पढ़ाने के भी पक्षपाती थे। परन्तु वे हिन्दी को अधिमान देते थे और संस्कृत का ज्ञान समस्त देशवासियों के लिए अनिवार्य मानते थे। उनकी उदात्त नीतियों के फलस्वरूप ही श्यामजी कृष्ण वर्मा और श्रीगोपालराव हरिदेशमुख जैसे भारतीय मनीषियों के अतिरिक्त कर्नल ऑल्काट और मैडम ब्लेवट्स्की भी न केवल हिन्दी के अध्ययन में प्रवृत्त हुए बल्कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भी उन्होंने भरपूर सहयोग दिया। महर्षि दयानन्द ने मैडम ब्लेवट्स्की को इस सन्दर्भ में लिखा था :—

"भारत की जनता मेरे वेदभाष्य के अंग्रेजी अनुवाद के प्रकाशित होने पर संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन त्याग देगी। मेरे वेदभाष्य समझने के लिए संस्कृत और हिन्दी अध्ययन आवश्यक है अन्यथा जो मेरा मुख्य उद्देश्य है, नष्ट हो जायेगा।"

महर्षि दयानन्द हिन्दी पत्रकारिता के प्रेरणास्रोत थे। सन् १८७० में 'आर्यदर्पण' मासिक पत्र मुंशी बख्तावरसिंह के संपादकत्व में शाहजहांपुर से निकाला। 'आर्यभूषण' सन् १८७६ में

शाहजहांपुर से मुंशी बख्तावरसिंह के ही सम्पादन में प्रारम्भ हुआ। 'भारत सुदशा प्रवर्तक' १८७९ से १९१२ तक मासिक पत्र के रूप में और फिर साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित होता रहा। प्रारम्भ में इसका नाम 'भारत सुदशा समर्थक' था लेकिन स्वामी जी ने इसका नाम बदलकर 'भारत सुदशा प्रवर्तक' कर दिया और उन्होंने स्वयं कुछ दिन तक इसका संपादन भी किया।

महर्षि दयानन्द जन-जन तक अपना सन्देश पहुंचाने के लिए निरन्तर सहज, सरल और प्रसादयुक्त भाषा को अपने ग्रन्थों, प्रवचनों और शास्त्रों में प्रयोग करते थे। उनकी भाषा पर श्री विनायक दामोदर सावरकर अत्यन्त मुग्ध थे। तभी तो उन्होंने लिखा था—

"ऐसी सरल हिन्दी भारत राष्ट्रभाषा बने, जिसमें ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश का निर्माण किया।"

इन सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की सत्प्रेरणा से कई विद्वानों ने हिन्दी को अपनाया, संवर्धित किया और आर्यसमाज के अथक प्रयासों से आर्यभाषा हिन्दी ने राष्ट्रभाषा की पदवी को प्राप्त किया।

महर्षि दयानन्द हिन्दी को 'आर्यभाषा' के नाम से अभिहित करते थे और इसे सीखना व पढ़ना सभी के लिए अनिवार्य मानते थे। किसी सज्जन ने हरिद्वार में जब उन्हें यह सुझाया कि वे अपने ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करायें तो उन्होंने कहा ***''ज्ञानवर्धन के लिये कोई भी भाषा सीखी जा सकती है। उसी प्रकार किसी भी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है। किन्तु अनुवाद विदेशी लोगों के लिये होने चाहिए अपने देशवासियों के लिये, स्वयं अपनी राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से साहित्य सृजन होगा तो एकता एवं संगठन भी इसके सम्पर्क से निश्चय ही आएगा।"***

महर्षि दयानन्द ने अपने व्याख्यानों में भी यह उत्कट इच्छा व्यक्त की थी — ***"मैं तो वह दिन देखना चाहता हूँ जब हिमालय से लेकर सागर तक एवं सारे ब्रह्मावर्त में देवनागरी लिपि में ही सभी आर्यभाषा हिन्दी को अपनाएं।"***

महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित आत्मकथा हिन्दी गद्य साहित्य की सर्वप्रथम आत्मकथा है। इस आत्मकथा में कवि, कथाकार और इतिहासकार के एकत्र दर्शन होते हैं। आत्मकथा से यह भी स्पष्टतया लक्षित होता है कि वे बहुत ही भाव प्रवण कवि थे, प्रकृति व नैसर्गिक सौन्दर्य के कुशल चितेरे थे और समस्त साहित्यिक विधाओं के निष्पक्ष समालोचक भी। उनका संस्कृत और हिन्दी पर समान अधिकार था। उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए थियोसोफिस्ट सोसायटी के अध्यक्ष 'कर्नल हेनरी स्टील ऑल्काट' ने लिखा था — "समस्त भारत में स्वामी दयानन्द से बढ़कर हिन्दी और संस्कृत का कोई प्रखर वक्ता हमारे देखने में नहीं आया।"

हिन्दी साहित्य के सुपरिचित हस्ताक्षर विष्णु प्रभाकर के शब्दों में — केवल नौ वर्ष के अल्पकाल में उन्होंने हिन्दी लिखने और बोलने का अभ्यास किया, वेदभाष्य सहित अनेक ग्रन्थों की रचना की और देशभर में घूम घूमकर व्याख्यान दिये, शास्त्रार्थ किये। अनेक बाधाओं से जूझते हुए उस काल में जब हिन्दी गद्य का निर्माण हो रहा था, उन्होंने वह कार्य कर दिखाया, जिसका मूल्य उस युग के किसी साहित्यकार से कम नहीं है।

चिन्तक होने के नाते उनकी रचनाओं में जहां एक ओर गम्भीर चिन्तन और विचारशीलता का परिचय मिला है वहीं उनमें शिष्ट हास्य और तिलमिला देने वाला व्यंग्य भी छलछलाता है। इस प्रकार अनायास ही वे एक ऐसे लचीले गद्य के रचनाकार बन जाते हैं जो जन मानस को सीधे और गहरे प्रभावित करता है। तत्सम और तद्भव शब्दों, मुहावरों का प्रयोग करके उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि जनता की भाषा में गम्भीर से गम्भीर साहित्य का सरल एवं सहज भाषा में सृजन किया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की साहित्य सर्जना के सम्बन्ध में विष्णु प्रभाकर द्वारा उपरोक्त शब्दों में की गई समालोचना उनकी हिन्दी सेवा के परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त तटस्थ, सामयिक व महत्त्वपूर्ण है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के पश्चात्वर्ती साहित्यकार किसी न किसी रूप में उनसे अवश्य प्रभावित रहे हैं। सामाजिक चेतना, राष्ट्रभक्ति, गौसंवर्धन, नारी सम्मान, धर्म और संस्कृति, हिन्दी आन्दोलन, सामाजिक असमानताओं का प्रतिरोध आदि विषयों में उनकी क्रान्तदर्शी विचारधारा का प्रभाव सर्वत्र देखा जा सकता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मुंशी प्रेमचन्द, क्षेम चन्द्र सुमन, पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, मैथिलीशरण गुप्त आदि हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवियों, लेखकों व समालोचकों की कृतियों में महर्षि दयानन्द की विचारधारा व साहित्य सृजन की शैली तथा भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष है।

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी हिन्दी, अंग्रेजी, पाली, प्राकृत, संस्कृत के अनन्य विद्वान और प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने व्याकरण, भाषाविज्ञान, पुरातत्त्व, इतिहास, समालोचना, हिन्दी पत्रकारिता आदि के विषय में जो भी लिखा वह आज भी मानक है।

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजी की यह विशेषता रही है कि उन्होंने हिन्दी के उन्नायक महापुरुषों के गुणकथन में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया है। उन्होंने "समालोचक" (जनवरी अप्रैल, १९०५) में लिखा था – "आर्यसमाज के प्रचारक एक बड़े दूरदर्शी पुरुष थे। जिन्होंने अपने शिष्यों की वृद्धि और गौरव के लिए हिन्दी का आश्रय लिया। इस बात को कट्टर से कट्टर आर्यसमाजी भी मानेगा कि यदि स्वामी दयानन्द हिन्दी को अपनी धर्मभाषा न मानते, तो उनका यह जलवा नहीं होता।

उक्त लेख से यह स्पष्ट होता है कि स्वामी दयानन्द ने हिन्दी की प्रतिष्ठा व उन्नयन के लिए जो सक्रिय कार्य किये उनसे उनके समकालीन तथा पश्चात्वर्ती समस्त साहित्यकार प्रभावित रहे हैं।

अनुसंधान अधिकारी,
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी
क्लिक-एण्ड-एस्टेट, शिमला – १२१००१

सृष्टि आख्यान

गुजरात के भील समाज में सृष्टि रचना की पुराकथा

डॉ. भगवानदास पटेल

प्राचीन काल में आनर्त के नाम से प्रसिद्ध गुजरात प्रान्त में फैली अरावली पहाड़ की शिखरावलियों में इस प्रान्त की खेड़ब्रह्मा एवं दांता तहसीलें स्थित हैं। इन पहाड़ी क्षेत्रों में भारत की एक विख्यात प्रजाति के लोग भील आदिवासी बसते हैं। संख्यातीत वर्षों से बसती इस भील प्रजाति की अपनी सुदीर्घ एवं अत्यन्त समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा है। वर्ष के ऋतुचक्र के अनुसार आते उनके सामाजिक और धार्मिक उत्सवों पर अरावली पहाड़ी प्रदेश का लोकजीवन गीत-संगीत, नृत्य-नाट्य तथा कथाओं-गाथाओं से सरावोर रहता है।

ऋतुचक्र के मास क्रम में यहां लोकमहाकाव्य, लोकाख्यान, गीत कथा आदि मौखिक संपदा भील आदिवासियों के साधु और भोपों (ओझा) द्वारा तंबूर, मंजीरें, सांग, सारंगी और बंसी जैसे लोकवाद्यों की संगति में गायी और कही जाती हैं। इन गाथाओं में 'पृथ्वी नी' उत्यसि कथा (धरण नी वही) नवलाख देवता ओ, करमीरों, शिव उमिया, जैसी पुराकथाएं और रूपा दे, तोल़ा दे जैसे छोटे लोकाख्यानों से लेकर रोम-सीतमानी वारता (भीलों का मौखिक रामायण), भीलोनुं भारथ (भीलों का मौखिक महाभारत), राहोर वारता, भरथरी लोकमहाकाव्य बहुत प्रसिद्ध हैं।

ये लोक महाकाव्य भील जीवन की कोई न कोई धार्मिक या सामाजिक प्रणाली को क्रियाशील करके सम्पन्न बनाते हैं। अत: ये भील समाज के धार्मिक अनुष्ठान, त्यौहार और सामाजिक प्रसंग के विशेष प्रकार के वातावरण के प्रभाव तले, गायक या कथावाचक के कंठ से तथा दर्शक या श्रोताओं के सहयोग से शब्दों द्वारा अपना कलामय रूप धारण करते हैं।

भादों मास में रात के समय भील आदिवासी महामार्गी पाट (एक मातृसत्तात्मक सामाजिक विधान) की रचना करके गुरु चेले बनाने का धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। इस उत्सव में भी साधु और उनके सहायकों द्वारा मध्यरात्रि के समय मंडल की रचना की जाती है। लाल कपड़े पर 'सामो' नाम के वन्य धान्य के दानों से अंकित चांद, सूरज, तारे, राम-सीता, पांच पांडव, पाडोर गाय, वासुकी नाग जैसी धार्मिक प्रतीकों की आकृतियां, शीतल ज्योत, चूरमे के लड्डू, श्रीफल चढ़ाये जाते और उच्चरित मंत्रों से एक विशेष प्रकार के धार्मिक वातावरण के बीच भील साधु सृष्टि रचना के अन्तर्गत पृथ्वी की उत्पत्ति की कथा कहते हैं। यहां इस कथा के कथक (कथावाचक) उत्तरी गुजरात के खेड़ब्रह्मा तहसील के खेड़बा गांव के सत्तर वर्ष आयु के नाथा भाई भूरा भाई गमार हैं। कथा का मूल रूप इस प्रकार है –

धरण न ता, अंकास न ता, एणी वेल़ पाओर न ता परबत न ता। सोंद न ता, सुरुझ न ता। एणी वेल़ जल़ था। जलुकार अता एणीवेल़ पगवोंन कीरा न अवतार जल़मा अता। जलुकार माही

वेल़ सांडी। सरगां पवनां वेल़ सरी। पाणी नव मईना सरगां रई। पाणीमाहु होवानुं एंडुं पेदास थऊ। एंडुं जलुकारमा आवुं। ए एंडुं फूटवा लागु। जलुकार पगवोंन पेदास था। पगवोंन ने जल़मा हेंड़वा फरवा, बेहुवानी जगा न अती। मनसा देवी थई पेदास। मनसा देवी ने मासलीनुं रूप लीत्तुं। मासतीनी दूरी माही हेर सूटी। हेर जल़ बारी आवी । कमल़नो डोडो थो। कमल़नुं फूल पेदास थऊ। पगवोंन कमल़ना फूलमा वसतांन थो।

पगवोंन विसारवा लागा के जल़मा ऊँ एखलो हुं। धरण बणावणी परहें। धरण नां बीज हात पेयाल़ ऊड़े वासंग नाग ना मखमा हें। पगवोंन जल़मा डूबो। जल़मा अतवस जातांस कापणा लागो। हट कमल़ना फूलमा आवो। सरी पगवोंन कमल़ना फूलमा हुवा लागो। पगवोंन ने नेंद आई। एणी वेल़ पगवोंन ना मखमाही अमी सूटी। अमी माही अमिया देवी पेदास थेई। अमियादेवी पगवोंन नी पेंगदाबणी करना लागी। पगवोंन नी नेंद खूली। पगवोंन बोलो, "तुं कुण हें?" अमिया बोली, "थारा मखनी अमीनी बणी थारी बेटी अमिया हुं।" एणीवेल़ पगवोंन ने कउ, "तुं वासंग नाग के मखही धरण नां बीज लाव, आपु वे धरण बणावीए।

पगवोंन ना केंवाही अमिया ने कासबी नो पेख लीतो। एंणी हात पेयाल़ ऊड़ा जल़मा डूबी। मूल़ो दु:ख वेही वासंग नाग कने आई। वासंग नाग हात फूणो हुमी करीन हूतो हें। एणीए तरण नां बीज अरधां कालां मखमा न अरधां कालां नखमा। वासंग जागो। कासबी पर झेंर नोंखुं एणी ऊधी थेई गई। पेस जल़ उपर आवी। अमिया बोली, "पगवोंन, सतनी होना नी हिली पेदास कर।" पगवोंन ने सतनी होना हिली पेदास की। अमियाने डोगा मा धरण नां बीज मखमाही न नखमाही बारां काटां। पेस अमियाए तरण नां बीज, माटी नं कमल़नु फूल मेंहुलीन पेगां करां। एणांनी रोटली बणावी। पगवोंने रोटली जल़ उपर मूकी। पगवोंन ना आथ नी एक-एक थपाटही रोटली लल़ उपर गाउ ना गाउं जावा लागी। पेस पगवोंन ने भरी नज़र अमिया पर नोखी। पेस अमिया ना देहमाही अगन नां टीपां परवा लागां। धरण पर आग लागी। तरण पाकी ए पथर न परबत बणा। धरण कासी रई ए माटी थेई।

पेस पगवोंने परी नज़र नोखी, बेंकुठपरी केल़ासपरी पेदा थेई। परी नज़र नोखा, जंगल झारी, झोनवर-पखी पेदास थेई। पगवोंने परी नज़र नोखा, मनखा अवतार पेदा थो।

पेस अमिया बोली, पगवोंन बतुं रसावी रां। अवण मार बीद एरी काट। पगवोंन कमल़ना फूल पर हूवा लागो। डूटी माही हेर सूटी। सिब पेदा थो। पगवोंन बोला, "कुण-कुण हो तमे? सिब बोलो, पाई पांड़ियां। अमिया नव फेरे माथुं उतारी न मार खोल़ा मां नोखे नं नव फेरा बल़े तो मुं पण्णुं। अमिया नव फेरे सिव ना खोल़ा मा माथुं नाखी न बल़ी। सिब नं अमिया मोंरी बैरुं थां। सिब नं अमिया केल़ासपरी गां। पगवोंन वेकुंठपरी गो।

अनुवाद

धरती नहीं थी, आकाश नहीं था। उस समय पत्थर नहीं थे, पर्वत नहीं थे। चांद नहीं था, सूरज नहीं था। उस समय जल था। सर्वत्र जल ही जल था। उस समय भगवान जल में कीड़े के अवतार में बसते थे। जल में एक बड़ा बवंडर आया।

पवन के साथ पानी स्वर्ग में गया। पानी नौ मास स्वर्ग में रहा। पानी से सोने (स्वर्ण) का अंडा बना। यह अंडा फिर से जल में आया। अंडा फटा और जलुकार भगवान आविर्भूत हुए। भगवान को जल में चलने, बैठने और सोने की जगह नहीं थी। तब मनसा देवी पैदा हुई। मनसा देवी ने महावली का रूप धारण किया। उसकी नाभि से एक धारा प्रकट हुई और जल से बाहर आई। वहां कमल का डोडा था, उससे एक पूर्ण कमल विकसित हुआ। भगवान कमल के फूल में बसने लगे।

भगवान सोचने लगे कि जल में मैं अकेला हूँ। धरती की रचना करनी होगी। धरती के बीज सात पाताल गहरे में बसने वाले वासुकी नाग के मुख में हैं। अत: भगवान ने गहरे जल में डूबने का प्रयत्न किया, किन्तु मध्य जल में जाते ही उनके प्राण घबड़ाने लगे। वे कंपित हुए और हटकर कमल के फूल में आ गये। श्रीमान् भगवान कमल के फूल में सोने लगे। भगवान को नींद आ गई। उस समय भगवान के मुख से अमृत छूटा। अमृत से उमिया देवी आविर्भूत हुई। उमिया देवी भगवान के चरण दबाने लगी। भगवान नींद से जाग उठे। भगवान पूछने लगे, तू कौन है? उमिया बोली, आपके मुख से छूटे अमृत से बनी आपकी बेटी उमिया हूँ। उस समय भगवान ने कहा, तू वासुकी नाग के मुख से धरती के बीज लेकर आ, हम दोनों धरती का सृजन करेंगे।

भगवान के आदेश से उमिया ने कछुवी का रूप धारण कर लिया। बह सात पाताल गहरे जल में डूबी। अनेक बाधाएं पार करके वासुकी नाग के पास आयी। वासुकी नाग सातों फन बंद करके सोये थे। फनों में से आधे बीज मुख में लिए और आधे नाखून में लिए। वासुकी जागृत हुए। उसने कछुवी पर विष डाला। वह औंधी हो गई। जल पर आ गई। उमिया ने भगवान से कहा, भगवान! सत्य के सोने की तीली पैदा करो। भगवान ने सत्य की सोने की तीली पैदा की। उमिया ने एक मिट्टी के पात्र में अपने मुख से और नाखून से धरती के बीज बाहर निकाले। उन बीज में उमिया ने कमल का फूल मिलाया उसकी रोटी बनायी। इस रोटी को भगवान ने जल पर रखा। भगवान के हाथ की एक-एक थपाट से रोटी जल पर कहां की कहां मीलों तक फैलने लगी। फिर भगवान ने एक दृष्टि उमिया पर डाली। उमिया की देह से अग्नि उठने लगी। धरती पर आग लगी। अग्नि से जो धरती पकी उसके पत्थर और पर्वत बने और जो धरती कच्ची रही वह मिट्टी बनी।

इसके बाद भगवान की एक दृष्टि पड़ने से वैकुंठपुरी, कैलाशपुरी पैदा हुईं। फिर दृष्टि पड़ी तो जंगल झाड़ी, जानवर, पक्षी पैदा हुए। भगवान ने फिर दृष्टि डाली तो मनुष्य रूप उत्पन्न हुआ। तब उमिया बोली, भगवान सब की रचना हो गई। अब मेरे लिए पति की खोज करो। भगवान कमल के फूल पर सोने लगे। नाभि में से धारा प्रवाहित हुई। शिव पैदा हुए। भगवान बोले, कौन-कौन हो तुम? शिव बोले, भाई बहन। उमिया नौ बार मस्तक काट के मेरी गोद में डाले और नौ बार जले तब ही उमिया के साथ विवाह करूंगा। उमिया ने नौ बार शिव की गोद में मस्तक काट के डाला और नौ बार जली। शिव और उमिया पति पत्नी बने। शिव और उमिया कैलासपुरी गये। भगवान वैकुंठपुरी गये।

भीलों की यह पुराकथा मंत्र के रूप में कही जाती है। उनके मंत्रों की एक विशेषता यह है कि इनमें आते शब्द स्वयं वस्तु या क्रिया बन जाते हैं। अंडे रूपी भगवान ने मन में बाहर आने की

इच्छा प्रकट की और जल पर कमल प्रकट हुआ। भगवान के मुख में से अमृत प्रवाहित हुआ और उमिया आविर्भूत हुई। उमिया ने कहा मेरे लिए पति की खोज करो और भगवान ने शिव प्रादुर्भूत किये। मंत्रों में शब्द पर अधिकार स्वयं वस्तु पर अधिकार है। यहां बोलने का अर्थ है, हो जाना। इस तरह बोलने के साथ हो जाने की क्रिया में से भीलों के मंत्रों और धार्मिक अनुष्ठानों के मूल देख सकते हैं।

पूर्वकालीन लिखित संस्कृत वांङ्मय और ग्राम प्रदेशों के मौखिक (वाचिक) साहित्य में प्रविष्ट सृष्टि रचना की कथा और विचार का आदि स्रोत निषाद भील बैगा जैसी जातियों की जीवन रीति अर्थात जीवन दर्शन में दीखता है। यह पुरी कथा केवल कथा रस संतृप्त करने के लिए नहीं है, बल्कि इस कथा पर पूरे प्रदेश के लोक की परम और अटूट आस्था है। इतना ही नहीं, यह उनके वर्तमान धार्मिक जीवन का मूलाधार है। उनका जीवन रसायन है।

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भील एक प्राचीन संस्कृति सम्पन्न जन समुदाय है। विख्यात पुरावस्तुविद् डी.डी. कोसम्बी निषाद समुदाय को ही भील मानते हैं। भारतीय संस्कृति को विशेष चेतना प्रदान करने में आदि भील लोगों का अनन्य योगदान रहा है। ऐसे प्राचीन जनसमुदाय के मौखिक साहित्य के अनुसंधान से भारत के सांस्कृतिक इतिहस की अनेक अप्रकट कड़ियां प्रकट हो सकेंगी।

३०४, मिथिला अपार्टमैंट, विजया बैंक के ऊपर
जजीस बंगला पार रास्ता, बोडक देव,
अहमदाबाद ३८००१५(गुजरात)